राष्ट्रीय जीवन-चरित माला

तात्या टोपे

इंदुमती शेवड़े

अनुवाद

सुन्दरलाल श्रीवास्तव

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विषय-वस्तु

		पृष्ठ
1.	शौर्य-गाथा	1
2.	गुमनामी से प्रसिद्धि की ओर	3
3.	भावी तूफान	7
4.	ज्वालामुखी के मुंह पर	13
5.	कानपुर में विद्रोह	21
6.	तात्या—सैनिक सलाहकार के रूप में	32
7.	तात्या—सेनाध्यक्ष के रूप में	40
8.	मेरेथन दौड़	59
9.	तात्या की गिरफ्तारी और प्राणदंड	69
10.	अंत और प्रारंभ	75
	परिशिष्ट—	79
	—क्या तात्या को वस्तुतः फांसी दी गयी ?	
	—ग्रंथ सूची	

1. शौर्य-गाथा

तात्या टोपे, जो 'तांतिया टोपी' के नाम से विख्यात है, 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के उन महान सैनिक नेताओं में से एक थे, जो प्रकाश में आये। 1857 तक लोग इनके नाम से अपरिचित थे, लेकिन 1857 की नाटकीय घटनाओ ने उन्हें अचानक अंधकार से प्रकाश में ला खड़ा किया। इस महान विद्रोह के प्रारंभ होने से पूर्व वह राज्यच्युत पेशवा बाजीराव द्वितीय के सबसे बड़े पुत्र बिठूर के राजा, नाना साहब के एक प्रकार से साथी-मुसाहिब मात्र थे, किंतु स्वतंत्रता संग्राम में कानपुर के सम्मिलित होने के पश्चात् तात्या पेशवा की सेना के सेनाध्यक्ष की स्थिति तक पहुंच गये। उसके पश्चात्वर्ती युद्धों की सभी घटनाओं ने उनका नाम सबसे आगे एक पुच्छल तारे की भांति बढ़ाया, जो अपने पीछे प्रकाश की एक लम्बी रेखा छोड़ता गया। उनका नाम केवल देश में ही नही वरन् देश के बाहर भी प्रसिद्ध हो गया। मित्र ही नहीं. शत्रु भी उनके सैनिक अभियानों को जिज्ञासा और उत्सुकता से देखने और समझने का प्रयास करते थे, समाचारपत्रो मे उनके नाम के लिए विस्तृत स्थान उपलब्ध था, उनके विरोधी भी उनकी काफी प्रशंसा करते थे। उदाहरणार्थ, कर्नल मॉलसन ने उनके संबंध में कहा है, "भारत में संकट के उस क्षण में जितने भी सैनिक नेता उत्पन्न हुए, वह उनमें सर्वश्रेष्ठ थे सर जार्ज फारेस्ट ने उन्हें, "सर्वोत्कृष्ट राष्ट्रीय नेता" कहा है जब कि आधुनिक अंग्रेजी इतिहासकार, पर्सीक्रास स्टेंडिंग ने सैनिक क्रांति के दौरान देशी पक्ष की ओर से उत्पन्न "विशाल मस्तिष्क" कहकर उनका सम्मान किया। उसने उनके विषय में यह भी कहा है कि "वह विश्व के प्रसिद्ध छापामार नेताओं में से एक थे।"

1857 के दो विख्यात वीरों, झांसी की रानी और तात्या टोपे में से, झांसी की रानी को अत्यधिक ख्याति मिली। उसके नाम के चारो ओर यश का चक्र बन गया किंतु तात्या टोपे के साहसपूर्ण कार्य और विजय अभियान रानी लक्ष्मी बाई के साहसिक कार्यों और विजय अभियानों से कम रोमांचक नहीं थे। जब कि रानी लक्ष्मी बाई के युद्ध अभियान झांसी, काल्पी और ग्वालियर के क्षेत्रों तक ही सीमित रहे थे। तात्या एक विशाल राज्य के समान कानपुर से राजपूताना और मध्य भारत तक फैल गये थे। यदि कर्नल ह्यू रोज ने, जो मध्य भारत युद्ध

अभियान के सर्वेसर्वा थे, रानी लक्ष्मी बाई की प्रशंसा "उन सभी में सर्वश्रेष्ठ वीर" के रूप में की थी, तो मेजर मीड को लिखे एक पत्र में, तात्या टोपे के विषय में यह कहा था कि वह, "महान युद्ध नेता और बहुत ही विप्लवकारी प्रकृति के थे और उनकी संगठन क्षमता भी प्रशंसनीय थी।" तात्या ने अन्य सभी नेताओं की अपेक्षा शक्तिशाली ब्रिटिश शासन की नींव को हिलाकर रख दिया था। उन्होंने शत्रु के साथ लंबे समय तक संघर्ष जारी रखा। जब स्वतंत्रता संघर्ष के सभी नेता एक एक करके अंग्रेजों की श्रेष्ठ सैनिक शक्ति से पराभूत हो गये तो वह अकेले ही विद्रोह की पताका फहराते रहे। उन्होंने लगातार नौ मास तक उन आधे दर्जन ब्रिटिश कमाण्डरों को छकाया जो उन्हें पकड़ने की कोशिश कर रहे थे। वह अपराजेय बने रहे। यह तो विश्वासघात था जिसके कारण अंग्रेज उन्हें अंत में पकड़ पाये।

इस महान देशभक्त की उपलब्धियां इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों से लिखी गई है। उनके शौर्य की गाथा महानता और संघर्ष से भरी हुई है और उतनी ही रोमांचक और उत्प्रेरक है जितनी कि इस स्वाधीनता संघर्ष की।

2. गुमनामी से प्रसिद्धि की ओर

आरंभिक जीवन

तात्या टोपे के प्रारंभिक जीवन के संबंध में अधिक जानकारी नहीं है। उनके विषय में थोड़े बहुत तथ्य उस बयान से इकट्ठे किए जा सकते हैं जो उन्होंने अपनी गिरफ्तारी के बाद दिया और कुछ तथ्य तात्या के सौतेले भाई रामकृष्ण टोपे के उस बयान से इकट्ठे किए जा सकते हैं जो उन्होंने 1862 ई०[1] में बड़ौदा के सहायक रेसीडेंट के समक्ष दिया था। तात्या का वास्तविक नाम रामचंद्र पाण्डुरंग येवालकर था और "तात्या" मात्र उपनाम था जब कि टोपे भी उनका उपनाम था जो उनके साथ ही चिपका रहा। उनका परिवार मूलतः नासिक के निकट पटौदा जिला में एक छोटे से गांव येवाले में रहता था इसलिए उनका उपनाम येवालकर पड़ा। तात्या ने, 1859 में दिए गए अपने बयान में अपनी आयु 45 वर्ष बताई थी जिससे यह पता लगता है कि उनका जन्म 1813/1814 के आसपास हुआ था। उनके पिता, जो एक देशस्थ ब्राह्मण थे, बहुत ही विद्वान थे। उनकी विद्वता उनकी जाति के अनुकूल थी। अच्छी नौकरी की तलाश में वह परिवार सहित पूना चले गये, पूना पेशवाओं की राजधानी थी। त्रयम्बक जी देंगाले, जो प्रसिद्ध दरबारी था, की सहायता से उन्हें अंतिम पेशवा बाजीराव द्वितीय के साथ परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला, जिन्होंने उनको अपने महल में पुजारी के रूप में नियुक्त कर लिया।

अपनी विद्वता, निष्ठा और विवेक बुद्धि से वह आगे चलकर पेशवा के धार्मिक विन्यास और गृह व्यवस्था विभाग के पर्यवेक्षक की स्थिति तक पहुंच गये।

तात्या जब मुश्किल से 4 वर्ष के थे तभी उनके पिता के स्वामी के भाग्य में अचानक परिवर्तन हुआ। बाजी राव 1818 में बसाई के युद्ध में अंग्रेजों से हार गये। उनका साम्राज्य उनसे छिन गया। उन्हें आठ लाख रुपए की सलाना पेंशन मजूर की गई और उनकी राजधानी से उन्हें बहुत दूर हटाकर बिठूर में रखा गया। यह स्पष्ट रूप से ऐसी स्थिति से बचने के लिए किया गया था कि वह

---

1 भारत में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, बाम्बे सरकार खण्ड 1 पृष्ठ 235 की सहायक सामग्री में से।

अपने खोए हुए साम्राज्य को पुन: प्राप्त करने के लिए कुछ नई चालें न चल सकें। बिठूर, कानपुर से 12 मील दूर गंगा के तट पर छोटा सा सुंदर नगर था। वहां उन्होंने अपने लिए एक विशाल प्रासाद का निर्माण करवाया और अपना अधिकांश समय धार्मिक कार्यकलापों में व्यतीत करने लगे। तात्या का परिवार भी पेशवा के साथ वहीं आ गया।

बचपन के साथी

तात्या एक अच्छे महत्वाकांक्षी नवयुवक थे। उन्होंने अनेक वर्ष बाजीराव के तीन दत्तक पुत्रों—नाना साहब, बाला साहब और बाबा भट्ट के साहचर्य में बिताए। एक कहानी प्रसिद्ध है कि नाना साहब, उनके भाई, झांसी की भावी रानी जिनके पिता उस समय सिंहासनच्युत पेशवा के एक दरबारी थे और तात्या; ये सभी आगे चलकर विद्रोह के प्रख्यात नेता बने। ये अपने बचपन में एक साथ युद्ध के खेल खेला करते थे और उन्होंने मराठाओं की वीरता की कहानियां सुनी थीं जिनसे उन्हें विद्रोह के लिए प्रेरणा प्राप्त हुई, इस कहानी को कुछ इतिहासज्ञ 'अप्रामाणिक' कहते हैं। उनके विचार से गाथा के इस भाग का ताना बाना इन वीरों के चारों ओर बुना जाना देश प्रेमियों के मस्तिष्क की उपज है फिर भी यह सच है कि इन सभी का पेशवा के परिवार से निकटतम संबंध था और वह अपनी आयु तथा स्थिति भिन्न होने के बावजूद भी प्राय: एक दूसरे के निकट आए होंगे, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता। खोए हुए राज्य की स्मृतियां अभी ताजी थीं, धुंधली नहीं पड़ी थीं। साम्राज्य को पुन: प्राप्त करना और अपने नुकसान को पूरा करना नाना और उनके भाइयों के अनेक युवा सपनों में से एक स्वप्न अवश्य रहा होगा। वे सभी बाद में अपने दुर्बल पिता की तुलना में काफी अच्छे साबित हुए थे।

तात्या ने कुछ सैनिक प्रशिक्षण तो प्राप्त किया था किंतु उन्हें युद्धों का अनुभव बिलकुल नहीं था। तात्या ने पेशवा के पुत्रों के साथ उस काल के औसत नवयुवकों की भांति युद्ध प्रशिक्षण प्राप्त कियाा था। उन्हें घेरा डालने और हमला करने का जो भी ज्ञान रहा हो वह उनके उस कार्य के लिए बिलकुल उपयुक्त न था जिसके लिए भाग्य ने उनका निर्माण किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने "गुरिल्ला युद्ध" के लिए अपनी मराठा जाति के स्वाभाविक गुण, वंश-परंपरा से प्राप्त किए थे। यह बात उस तरीके से जो उन्होंने ब्रिटिश सेना-नायकों से बचने के लिए प्रयोग किया सिद्ध हो जाती है। रामकृष्ण टोपे के बयान में जैसा कहा गया है उसके अनुसार तात्या अपने पिता की 12 संतानों में से दूसरे थे। उनका एक सगा और छ: सौतेले भाई, इस तरह 7 भाई और चार

बहनें थीं। यद्यपि तात्या अपनी पत्नी बच्चों के साथ अलग रहते थे फिर भी सभी व्यवहारिक कार्यों के लिए उनका परिवार संयुक्त परिवार था।

एक विशिष्ट व्यक्तित्व

तात्या देखने में अधिक अच्छे तो नही थे फिर भी उनके व्यक्तित्व में विशिष्ट आकर्षण था। जानलैंग ने जब उन्हे बिठूर में देखा था तो वे उनके व्यक्तित्व से प्रभावित नहीं हुए थे। उन्होंने तात्या के विषय में कहा है कि वह "औसत ऊंचाई, लगभग पांच फीट 8 इंच और इकहरे बदन के किंतु दृढ़ व्यक्तित्व के थे, देखने में सुंदर नहीं थे। उनका माथा नीचा, नाक नासाछिद्रों के पास फैली हुई, दांत बेतरतीब थे। उनकी आंखें प्रभावी और चालाकी से भरी हुई थीं जैसी कि अधिकांश एशियावासियों की होती हैं किंतु उसके ऊपर उनकी विशिष्ट योग्यता के व्यक्ति के रूप मे कोई प्रभाव नहीं पड़ा।"[1]

"बाम्बे टाइम्स के संवाददाता ने, तात्या से उनकी गिरफ्तारी के पश्चात् भेंट की थी, अप्रैल 18, 1849 के संस्करण में लिखा था कि तात्या न तो खूबसूरत हैं और न ही बदसूरत, किंतु वह बुद्धिमान है। उनका स्वभाव शांत और निर्बंधित है। उनका स्वास्थ्य अच्छा और औसत कद है।

अन्य वर्णन जो हमें प्राप्त हो सके है, हमे बताते है कि तात्या की भौहें खिची हुई थीं, गाल की हड्डियां उभरी हुई थीं और जबड़ा चौड़ा था जिससे उनके निश्चयात्मक और बुद्धिमत्तापूर्ण मस्तिष्क का परिचय मिलता था। उनके बाल घने घुंघराले थे और मूंछे चौड़ी थीं। उन्हें मराठी, उर्दू और गुजराती का अच्छा ज्ञान था। वे इन भाषाओं में धाराप्रवाह बोल सकते थे। अंग्रेजी तो वह मात्र अपने हस्ताक्षर करने भर के लिए जानते थे, उससे अधिक नहीं। वह रुक-रुक कर, किंतु स्पष्ट रूप से, एक नपी तुली शैली में बोलते थे किंतु उनकी अभिव्यक्ति का ढंग अच्छा था और वे श्रोताओं को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। यह सच है कि तात्या अपनी वाक्-शक्ति और समझाने की शक्ति से प्राय: अपने विरोधियों की सेनाओं को भी समझाकर अपने पक्ष में मिला लेते थे।

उद्धत्त चरित्र

बिठूर में तात्या की योग्यताओं और महत्वाकांक्षाओं के लिए न के बराबर स्थान था और वह एक उद्धत्त व्यक्ति बनकर ही वहां रहते, यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि वह कानपुर गये और उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरी कर ली। किंतु वह शीघ्र ही हतोत्साहित होकर लौट आए। इसके बाद उन्होंने कुछ समय तक महाजनी का काम किया किंतु इसे बाद में छोड़ दिया क्योंकि यह

1 जान लैंग वांडरिंग इन इंडिया एंड अदर्स स्केचेज ऑफ लाइफ इन हिंदुस्तान पृष्ठ 410—11

उनके स्वभाव के बिलकुल प्रतिकूल था। तात्या के पिता पेशवा के गृह प्रबंध के पहले ही से प्रधान थे इसलिए उन्हें एक लिपिक के रूप में नौकरी पाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। किंतु वह अपनी इस हालत से खुश न थे।

एक कहानी से पता चलता है कि तात्या का नाम 'टोपे' कैसे पड़ा। एक कर्मचारी की विश्वासघात संबंधी योजनाओं का पता लगाने में इस नवयुवक लिपिक की योग्यता, तत्परता और चातुर्य से प्रभावित होकर पेशवा ने एक विशेष दरबार में 9 हीरों से जड़ी हुई एक टोपी दी और दरबार में उपस्थित लोगों ने "तात्या टोपे" के नाम से उनकी जय-जयकार की। 1851 में पेशवा की मृत्यु के पश्चात्, नाना बिठूर के राजा हो गये और तात्या उनके प्रधान लिपिक बने। विचारधारा एक जैसी होने के कारण, वे एक दूसरे के इतना निकट आए जितना कि पहले कभी नहीं थे और शीघ्र ही वे नाना के मुसाहिब के रूप में प्रसिद्ध हो गये। उस समय किसी ने इस बात की कल्पना भी नहीं की थी कि भाग्य ने इस छोटे से अस्पष्ट व्यक्तित्व वाले लिपिक को आने वाली भयानक घटनाओं में, जिन्होंने बाद में ब्रिटिश साम्राज्य का ढांचा लड़खड़ा दिया था, एक महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए नियुक्त कर दिया है और वह अपने लिए भारतीय इतिहास के पृष्ठों में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेंगे।

3. भावी तूफान

तात्या जिस समय प्रकाश में आए, उस समय उत्तरी भारत का लगभग संपूर्ण भाग अग्नि की लपटों से झुलस रहा था। मेरठ, दिल्ली और उत्तर प्रदेश के अनेक अन्य स्थानों पर सिपाही विद्रोह प्रारंभ हो चुका था। यह विद्रोही धीरे-धीरे नागरिकों के बीच मिलते गये और विद्रोह का नेतृत्व स्थानीय नेताओं के हाथ में आ गया। सारा देश विदेशी शासकों से, जिन्हें "दम्भी फिरंगी" कहा जाता था, जो भारत में व्यापार करने आए थे और शासक बन बैठे थे, छुटकारा पाने के लिए महान् संघर्ष में लगा हुआ था।

कंपनी बहादुर

आश्चर्य तो यह है कि 'कंपनी बहादुर' जैसा कि लोग उस समय ईस्ट इंडिया कंपनी को कहते थे इस भयानक तूफान से परिचित नहीं था जो शीघ्र ही बड़ी तेजी से उसे अपनी गिरफ्त में लपेट लेने वाला था। इसमें संदेह नहीं कि कुछ उड़ती हुई जानकारी उस वर्ष जनवरी महीने में सुनने में आई थी, किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि किसी ने उस जानकारी पर गंभीरता पूर्वक विचार नहीं किया था। इसमें कोई भी संदेह नहीं कि सेना के बीच अशांति और विद्रोह की चिंगारी पड़ गई थी किंतु उनकी विद्रोही आत्मा का परिचय सर्वप्रथम उस समय मिला जब मंगल पांडे वाली घटना हुई। रहस्यपूर्ण ढंग से 'चपातियों' या लाल कमल के फूलों का वितरण या विद्रोह को उकसाने वाली जिहाद से संबंधित घोषणाएं, जिसमें से एक दिल्ली की जामा मस्जिद की दीवारों पर भी चिपकाई गई थी, जैसी रहस्यमय घटनाएं हो रही थीं। यह भी अफवाह फैलाई जा रही थी कि परसिया और रूस की सेनाएं फिरंगियों को इस देश से खदेड़ बाहर करने के लिए बढ़ती आ रही थीं। वातावरण में तनाव और अशांति थी परंतु इन सब बातों से कंपनी बहादुर की आंख जरा देर के लिए भी न खुली थी।

ऐसा कोई कारण भी न था कि वे अपने आपको घिरा हुआ या भयभीत समझते। उनकी शक्ति ने भारत को इतनी दृढ़ता से आबद्ध कर लिया था कि 1857 उनके शासन काल का सर्वश्रेष्ठ समय कहा जा सकता है। प्लासी के युद्ध

के पश्चात् भारत का मानचित्र पूरी तरह परिवर्तित हो चुका था। विरोधी फ्रांसीसी साम्राज्यवाद छोटे-छोटे टुकड़ों तक ही सीमित रह गया था, हैदर अली के तूफानी हमले अंततः समाप्त हो चुके थे; दृढ़ निश्चयी गोरखाओं को परास्त किया जा चुका था और बर्मा को ब्रिटिश भारत में सम्मिलित कर लिया गया था। दिल्ली का सम्राट मात्र एक पेंशनयाफ्ता व्यक्ति बनकर रह गया था, महत्वाकांक्षी और शक्तिशाली मराठाओं को, जिन्होंने सारे भारत की अपनी शक्तिशाली और शीघ्रगामी सेनाओं के द्वारा माप कर डाली थी, परास्त किया जा चुका था। डलहौजी के व्यपगमन के सिद्धांत (Doctrine of Lapses) ने बचे हुए छोटे-मोटे राज्यों और जागीरों को ऐसा बना दिया था कि वे ताश के पत्ते से बने भवन की तरह लड़खड़ा रहे थे। ब्रिटिश सार्वभौमिकता पूर्ण हो रही थी।

विद्रोह के कारण

1857 का विद्रोह जिन कारणों से हुआ उनसे सभी परिचित है। सरजान लारेंस ने कहा था, "यह चरबी लगी कारतूस और मात्र चरबी लगी कारतूसों के कारण हुआ" किंतु चरबी लगी कारतूस मात्र ही इतना बड़ा और शक्तिशाली तूफान लाने में समर्थ नहीं हो सकती थी। वास्तव में चरबी लगी कारतूस, जैसा कि सिपाहियों को संदेह था, उन्हें ईसाई धर्म में संपरिवर्तित करने का एक जघन्य हथियार था, इसके लिए तो मुहावरेदार भाषा में यह कहा जा सकता है कि यह पके हुए फोड़े पर नश्तर था। इससे पहले भी अनेक सैनिक सुधार हो चुके थे जिसमें से एक यह था कि सिपाही अपनी शान से बढ़ाई गई दाढ़ी एक निर्दिष्ट पैटर्न में ही रखे। दूसरा था भारतीय पगड़ी के स्थान पर चमड़े से बने टोप पहने (इस टोप की वजह से वेल्लोर में सिपाही विद्रोह हो चुका था) बर्मा युद्ध के दौरान सिपाहियों को समुद्र यात्रा करने पर मजबूर कर दिया गया था (समुद्र यात्रा हिंदू धर्म में निषिद्ध है) सिपाहियों ने इसका विरोध भी किया था क्योंकि वे ऐसा समझते थे कि यह उनके धार्मिक विश्वासों पर अनावश्यक आक्षेप था लेकिन कंपनी सरकार ने उनके सदेह के निराकरण के लिए कोई भी प्रयास नहीं किया था।

वास्तव में अनेक कारणों से अंग्रेजों के विरुद्ध समाज के सभी वर्गों में कई वर्ष पहले से धीरे-धीरे जहर फैल रहा था। चार्टर अधिनियम, 1813 ने सारे भारत का द्वार सभी अंग्रेजों के लिए खोल दिया था जिसके परिणामस्वरूप मिशनरियों के धर्म परिवर्तन कराने संबंधी कार्यकलाप तेजी से बढ़ते जा रहे थे। एक समसामयिक व्यक्ति ने यह कहा कि "मिशनरियों पर से रोक हटा ली गई थी, ताला तोड़कर चर्च के दरवाजे पर फेंक दिया गया था, धर्मग्रंथों को

बाहर लेजाकर उन पर प्रवचन करने का मौका दे दिया गया था। यह पहला मौका था जब ईसाई सरकार भारत में ईसाइयत के प्रसार का विरोध न कर सकी।[1]

विभिन्न सुधार

चार्टर अधिनियम, 1813 के ठीक बाद ही विलियम बैंटिक के सुधार सामने आए जिन्होंने सती और शिशु हत्या का उन्मूलन किया। 1850 के इक्कीसवें अधिनियम के अंतर्गत धर्म परिवर्तन करने वाले लोग भी अपने पूर्वजों की सम्पत्ति के वारिस बनने के लिए समर्थ हो गये। इन सभी बातों से लोगों के मन में आशंका पैदा हो गई और उन्होंने यह समझा कि ऐसा करना उनके धर्म में हस्तक्षेप है। बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश में हुए भूमि सुधारों ने जमींदारों को भी विरोधी बना लिया। ब्रिटिश प्रशासनिक सुधारों से समाज के सामंतवादी ढांचे में पूरी तरह परिवर्तन हो गया जिससे प्रायः सभी वर्गों के लोग और उनके परम्परागत व्यवसायों पर प्रभाव पड़ा। इन सभी के ऊपर डलहौजी के व्यपगमन के सिद्धांत ने छोटे राज्यों के अंतविलयन का एक 'स्टीम रोलर' जैसा अभियान चलाया जिससे चारों ओर असंतोष व्याप्त हो गया।

अविश्वास

अधिकांश देशी शासकों के मन में जिन्होंने विद्रोह में मुख्य रूप से भाग लिया था, अंग्रेजों के प्रति विक्षोभ था। मुगल सम्राट बहादुर शाह ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि अंग्रेज उनके पितामह शाह आलम के साथ की गई संधियों का सम्यक् अनुपालन नहीं कर रहे थे और सम्राट की स्थिति स्वामी के स्थान से, जो उन्हें पहले प्राप्त थी, घटाकर पेंशनभोगी मात्र बना दी गई।

रानी लक्ष्मी बाई की झांसी को इसलिए ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया कि उसने अपने वारिस का जो दत्तक ग्रहण किया था, उसे अंग्रेजों ने अनुमोदित नहीं किया। नाना साहब को, जो पेशवा के सही उत्तरजीवी और वारिस थे, अपने पिता की पेंशन पाने से इंकार किया जा रहा था। इसी समय सतारा, नागपुर, सम्भलपुर और अनेक छोटे-छोटे राज्यों को भी ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया था। फिर भी अंग्रेजों के न्याय में कुछ विश्वास रखने के कारण अनेक राज्यों ने अपने एजेंटों को अपने मामलों की वकालत करने के लिए इंगलैंड भेजा, किंतु किसी को भी न्याय नहीं मिला। अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने के साथ ही देशी राज्यों के मन में ब्रिटिश न्याय के संबंध में जो कुछ

1 रसल डब्ल्यू, माई इंडियन म्यूटिनी डायरी, भूमिका, माईकल एडवर्ड्स, पृष्ठ 21

थोड़ा बहुत विश्वास बाकी था वह भी समाप्त हो गया। मालसन ने ठीक ही लिखा है, "विद्रोह का वास्तविक कारण अविश्वास था। हमारे सिपाहियों के मन में यह अविश्वास ही था जिसने उनके मन को संदेह से भर दिया; हमारी ये राज्यों को मिला लेने की नीति, हिंदुओं के प्रमुख व्यक्तियों को दत्तक ग्रहण करने की अनुमति देने से इंकार करना, जो उनका एक आवश्यक धार्मिक कार्य था, सारे जनसमुदाय को ऐसे दुरूह नियमों के प्रवर्तन के अधीन लाना जिनसे वे पहले से परिचित नहीं थे, हिंदुओं के रीति रिवाजों को जिन्हें वे कानून से अधिक महत्व देते थे, भंग करना, कुछ ऐसे कारण थे जिनसे बड़ी संख्या में भू स्वामी और ग्रामीण जनता ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ हो गई थी। इसी पृष्ठभूमि में चरबी लगी कारतूसें भयानकतम रूप में सामने आयी।

विभाजक खाई

यह अविश्वास तो दूर किया जा सकता था, यदि अंग्रेजों को यह पता होता कि उनके साथ कैसे व्यवहार किया जाए। लेकिन सच तो यह है कि उन्होंने कभी भी यह समझने की कोशिश नहीं की कि भारतीय जनता उनसे क्या चाहती है? शासकों और शासितों के बीच की यह विभाजक खाई बढ़ती ही गई। माइकल एडवर्ड ने जो रसेल की डायरी के संपादक हैं, यह कहा है कि "जैसे जैसे अंग्रेज अपनी शक्ति के प्रति जागरूक होते गये वैसे वैसे वे एकाकी और पहुंच के बाहर होते गये, और उनके मन में एक साम्राज्यवादी सरकार की स्थापना की भावना प्रबल होती गई, क्षुद्र और विजित लोगों के प्रति घृणा बढ़ती गई और वे शासक वर्ग के लक्षणों का अधिक से अधिक प्रदर्शन करने लगे।[1]

शासकों और शासितों के बीच खाई गहरी होती चली गई। विलियम एड-वर्ड रसेल 'लंडन टाइम्स' के युद्ध संवाददाता थे, उन्होंने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की असफलता की परिस्थितियों के संबंध में, जो विद्रोह के दौरान प्रकाश में आई थीं, जांच करने के लिए 1858 में भारत की यात्रा की थी। उन्होंने इस बात का विवेचन किया है कि छावनियों में रह रहे अंग्रेज और स्थानीय जनता के बीच, नगर और बाजार में, कितना अंतर था; वे एक दूसरे से पूरी तरह अलग थे।

भाषा, विश्वास या राष्ट्रीयता में, दोनों के बीच किसी प्रकार की एकसूत्रता नहीं थी। "अंग्रेज शासन करते हैं, कर इकट्ठा करते हैं, बाल पार्टियां देते हैं, घोड़ा गाड़ियों में चलते हैं, घुड़दौड़ करते हैं, चर्च जाते हैं, सड़कें ठीक कराते हैं, थियेटर बनवाते हैं, अपने मिशनरी भवन बनवाते हैं, कचहरी लगाते हैं, और हल्के रंग की सुस्वादु कड़वी शराब पीते हैं। भारतीय लोग जिस भूमि का कर

1 रसेल; वही, भूमिका पृष्ठ 20

देते हैं, उस पर जो कुछ भी पैदा होता है उसे कर के रूप में दे देते है, जुआ खेलते है, प्रोपोगंडा करते हैं, तू-तू मैं-मैं करते है, गिरते हुए मंदिरों में बैठकर पूजा करते है, प्राय: गंदे तालाबों में नहाते-धोते है और अर्द्ध-शुद्ध पानी पीते है। दोनों के बीच की यह खाई बिलकुल निश्चित है।"

उद्दंड विदेशी

इस खाई को कभी भी पाटा नहीं जा सका। अंग्रेज अपनी प्रजा के लिए विदेशी ही बने रहे, मुगलों की तरह उनमे घुले मिले नहीं। विदेशी शासन-सत्ता सदा नापसंद किया जाता है और विशेष रूप से तब जब कि शासक बहुत ही हैकड़-बाज और निरंकुश हो, जैसा कि उस समय अंग्रेज शासक थे। और ऐसे शासन को तो समाप्त किया ही जाना था।

किंतु उद्दंड विदेशी यह नहीं समझ पाए कि देश मे अशांति फैल रही थी। इस प्रकार ' बिना विचारे किए जाने वाले काम, प्रगति, प्रशासनिक सुधार, रेल का भय, सभी का बोझ भारतीयों को बहुत दबा रहा था। राजकुमार अपना राज्य छिन जाने की छाया में जी रहे थे, भू स्वामी अपने हक की खोज बीन से परेशान थे, सैनिकों को अपनी जाति पर हमला होने की आशंका बनी रहती थी। किंतु सरकार, ऐसा प्रतीत होता था कि भगवान की इच्छा पर चल रही हो और वे भगवान भी जो विदेशी हों। यह तब तक होता रहा जब तक कि विद्रोह पूरी तरह प्रारंभ न हो गया।"[1]

कुछ विवेकी व्यक्ति

इतना होने पर भी शासकों में कुछ ऐसे विवेकी व्यक्ति थे जो भावी तूफान के संकेत देख सके और उन्होंने ऐसा तूफान आने की भविष्यवाणी भी की। हैनरी लारेंस ने यह कहा कि सबसे पहले सेनाएं भंग करनी होंगी जब कि इवान्स वेल्स जैसे लोगों ने यह चेतावनी दी कि लार्ड डलहौजी के उच्च स्तरीय प्रशासनिक तरीकों में आवश्यक परिवर्तन अपेक्षित है।

कर्नल चेस्टर ने 13 अप्रैल को मेजर जनरल हियरसे को लिखा था कि शिमला की ऊंचाई पर बैठकर ऐसा प्रतीत होता था मानों कारतूसों की वजह से होने वाला विद्रोह समाप्त हो रहा था और सारा खतरा खत्म हो गया था। और ऐसा ही विचार उन सब का था जो शिमला में हुए स्टाफ की बैठक में सम्मिलित हुए थे। किंतु कैप्टन मार्टिनियो ने जो अम्बाला में बंदूकचियों के दस्ते के कमांडर थे, कैप्टन एस एच बीचर को, जो कर्नल चेस्टर के नेक्स्ट-इन कमांडर थे, पांच मई के पत्र में कुछ दूसरी बातें ही लिखी। इस पत्र में सिपाहियों की मान-

1 रसेल : वही, पृष्ठ 29-30

सिक स्थिति का वर्णन है जो विद्रोह प्रारंभ होने के ठीक पांच दिन पहले थी ।

"यह मान लेने में हमारी भारी भूल होगी कि हम हिंदुस्तानी सिपाहियों को अंग्रेज सिपाहियों की तरह ड्रेस देते हैं, शस्त्र देते हैं और ड्रिल कराते है, इतने से ही उनके विचार और भावनाएं भी अंग्रेजों जैसी हो जाएंगी । मैं तो उन्हें परेड में रोजाना केवल दो घंटे के लिए ही देखता हूं किंतु मुझे क्या पता वे बाकी 22 घंटों में क्या करते हैं ? अपनी लाईन में बैठकर वे किस विषय पर बात करते हैं ? वे कैसी योजनाएं बनाते है ? इस संबंध में जो कुछ भी मैं कह सकता हूं वह यह है कि मानो मैं साइबेरिया में पहुंच गया हूं ।"

"मुझे पता है कि देशी सेना की सभी रैंकों में एक अस्वाभाविक विद्रोह की गतिविधि चल रही है, किंतु इस सब का परिणाम क्या होगा, कहने में मुझे भय लग रहा है । मुझे केवल इतना ही मालूम हो पाया है कि कोई तूफान आने वाला है । चक्रवाती हवाओं की आवाज मुझे सुनाई पड़ रही है । किंतु यह तुफान क्या होगा ?"

तो फिर वह खतरा कहां है ? जिसके विषय में आप कह रहे है ? मेरी समझ में वह हर जगह है "बाहर भी और नजदीक भी" । सारी सेना किसी पागल बना देने वाले प्रभाव के अधीन हैं । वह कुछ होने वाली घटनाओं का इंतजार कर रही है । ऐसा लगता है किसी अज्ञात अदृश्य एजेंसी ने एक बिजली का जीवित तार चारों ओर फैला दिया हो ।

मैं नहीं समझता कि वे यह जानते हैं कि उन्हें क्या करना होगा या उनके मन में कोई योजना है सिवाए इसके कि वे अपने धर्म और विश्वास पर किसी प्रकार का आक्षेप न सह पाएंगे । . ... लेकिन ईश्वर ही रक्षा करे । सभी ज्वलनशील तत्व हाथों में है ... ... अब वे हमारा विश्वास नहीं करते, वे भय की सीमा से बाहर हो गये हैं और बहुत जल्दी वे नियंत्रण से परे भी हो जाएंगे ।

"यदि किसी स्थान पर एक छोटी सी चिंगारी भी सुलगने लगेगी तो यह शीघ्र ही चारों और फैल जाएगी और विश्व व्यापी बन जाएगी ।"[1]

कैप्टन मार्टिनियो के शब्द वास्तव में भविष्यवाणी जैसे थे । मेरठ में विद्रोह की आग ठीक पांच दिन बाद 10 मई को भड़की थी ।

1 जे. ए. बी. पामर; दि म्यूटनी आउट ब्रेक एट मेरठ इन 1857, पृष्ठ 33

4. ज्वालामुखी के मुंह पर

यदि कैप्टन मार्टिन्यू की चालाक आंखें, तूफान आने से ठीक पहले दीवारों पर चिपकाए गए लेखों को देख पातीं तो कानपुर का स्टाफ या उस विशेष प्रयोजन के लिए सारा देश इस प्रकार की स्थिति में न पड़ता; यहां तक कि मार्च, अप्रैल तक भी वह स्थिति न आती। सरजार्ज ट्रेवेलियन इस बात पर खेद व्यक्त करते हैं कि "वास्तव में यह बात बहुत ही अजीब लगती है कि भारत में रहने वाले हमारे देशवासी इस बात का जरा भी अंदाज नही लगा सके कि आने वाले कुछ महीनों में क्या होने वाला है। यह अविश्वसनीय लगता है कि हमारे अधिकारी सामान्य जिंदगी बिता रहे थे, शिकार करना, भोजन करना, नाचना-गाना, थर्मोमीटर की संभावित ऊंचाई पर बैठकर चारों ओर का निरीक्षण करना और अपनी तरक्की के संभावित मौके खोजने में लग रहे थे जब कि उनके आवास से कुछ ही कदम के भीतर देशी लोग भावी विद्रोह की योजना पर विचार कर रहे थे, इस बात की व्यवस्था कर रहे थे कि एडजुटेंट को कौन मारेगा, कर्नल के बंगले को आग कौन लगाएगा और ग्वालियर, नेपाल तथा सेंट पीटर्सबर्ग से उन्हें सहायता की कितनी उम्मीदें थीं।"[1]

क्षुब्ध पेशवा

वास्तव में कानपुर उत्तरी भारत के सबसे बड़े विद्रोह केंद्रों में से एक था। कानपुर के पास ही नाना रहते थे जिनके साथ अंग्रेजों ने बड़ा अभद्र व्यवहार किया था। बाजी राव की मृत्यु के पश्चात् नाना को उनकी पदवी या उनकी पेंशन रखने या प्राप्त करने की अनुमति नहीं दी गई थी। भूतपूर्व पेशवा ने एक इच्छा-पत्र द्वारा अपनी सारी संपत्ति नाना के नाम कर दी थी जिसके अनुसार नाना ने अपनी पिता की संपत्ति का कब्जा लिया था। पेशवा की संपत्ति अनेक भारतीय भू-स्वामियों की अगाध संपत्ति की तुलना में बहुत अधिक थी। किंतु अंग्रेज सरकार ने उनकी पेंशन इस आधार पर रोक दी कि वह भूतपूर्व पेशवा को दिया गया व्यक्तिगत अनुदान था और वह पेंशन आनुवंशिक नहीं थी। इस वजह से पेशवा के पुत्रों का सरकार की संपत्ति पर दावा करने का कोई अधिकार नहीं था।

---

1 सर जार्ज ट्रेवेलियन; कानपुर पृष्ठ 41

पेशवा ने तो उनके लिए आवश्यकता से अधिक संपत्ति पहले ही छोड़ रखी थी। नाना और उनके वकीलों ने यह तर्क दिया कि पेशवा को पेंशन "अपने और अपने परिवार के पालन पोषण के लिए" दी गई थी और इस वजह से परिवार को, इस बात पर विचार किए बिना कि पेशवा ने अपने जीवन काल में इतना कुछ बचाया था, पेंशन का दावा करने का विधिक अधिकार था। तदनुसार पेशवा ने अपनी पेंशन और जागीर बनाए रखने के लिए गवर्नर जनरल को अपील की, किंतु वह अपील अस्वीकार कर दी गई थी। तब नाना ने अपने वकील, अजी मुल्ला खान को इंगलैंड में बोर्ड आफ डाइरेक्टर के सामने अपने मामले की वकालत करने के लिए भेजा। किंतु बोर्ड ने गवर्नर जनरल के निर्णय को ही मान्यता दी। अनेक अंग्रेजों ने इस बात पर टीका-टिप्पणी की और कहा कि विधिक स्थिति चाहे जैसे भी हो, समय की मांग है कि पेंशन का कुछ भाग पेशवा के कुटुंब को दिया जाना चाहिए।

एक इंच भूमि भी नहीं

नाना को तो अभी बहुत कुछ देखना था। 1832 के रेगुलेशन एक्ट ने नाना और उनके परिवार को सामान्य ब्रिटिश ला कोर्ट्स की अधिकारिता से बाहर घोषित किया था। पेशवा की मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् यह एक्ट निरस्त कर दिया गया था जिसके परिणामस्वरूप हुआ यह कि नाना और उनके भाइयों की स्थिति साधारण मनुष्य जैसी ही हो गई। किंतु इसमें सबसे खराब बात तो यह थी कि पेशवा की जागीर हाथ से निकल जाने के पश्चात् उनके पास भारत में कहीं भी एक इंच जमीन नहीं रह गयी थी क्योंकि नाना को बिठूर की भूमि में केवल जीवनहित ही दिया गया था। इन सबकी वसूली से नाना को अपने पिता का श्राद्ध संस्कार करते समय कितनी पीड़ा हुई इसके संबंध में बहुत कारुणिक कहानी कही जाती है। उस समय विद्यमान रिवाजों के अनुसार, जब कभी भी पेशवा की मृत्यु होती थी तो ब्राह्मणों को पांच महादान, अर्थात्, हाथी, घोड़ा, सोना जवाहरात और भूमि दी जाती थी। नाना ने बाजी राव का श्राद्ध संस्कार बड़े पैमाने पर किया किंतु वह किसी को कहीं भी कोई भी जमीन नहीं दे सके क्योंकि उनके पास खुद की कोई जमीन नहीं थी। सरदार रघुनाथराव विनचरकर ने इस संस्कार में भाग लिया था जिसमें उन्हें नाना की इस स्थिति से बहुत ही पीड़ा हुई और उन्होंने चुपचाप इस प्रयोजन के लिए नाना को कुछ गांव इनाम में दे दिए तथा उनके विषय में यह कहा कि वे गांव मूलत: पेशवा के ही थे। कहा जाता है कि पेशवा की भूतपूर्व प्रजा की ओर से ऐसी निस्वार्थ भक्ति को देखकर नाना के आंसू नहीं रुक सके[1]।

1 इतिहास संग्रह; ऐतिहासिक स्फुट लेख, भाग 3, पृष्ठ 26

इसमें शक नहीं कि अंग्रेजों को इसके बाद ऐसा कोई मौका नहीं मिला कि वे ऐसा ही कोई उपहार देकर नाना को संतुष्ट कर पाते। वे तो अपने आप में ही मस्त थे। उनके व्यवहार का एक उदाहरण और लीजिए। सरकार ने नाना को अपने पिता की मुद्रा का उपयोग करने के लिए अनुमति नहीं दी। सेन के कथनानुसार इतना सब होने पर भी जनता की निगाह में नाना पेशवा के अधिकारी वारिस थे और अंग्रेजों ने भी नाना को महाराजा की सम्मानजनक पदवी का प्रयोग करने से इंकार नहीं किया था। मुद्रा का उपयोग करने से नाना की राजनीतिक स्थिति में कोई खास वृद्धि नहीं होने वाली थी[1]। सरकार नाना को आसानी से और अधिक पीड़ा न पाने से बचा सकती थी किंतु अंग्रेजों ने जब भी ऐसा करने के लिए सोचा, छोटी-छोटी कमियों के आधार पर इससे इंकार भी कर दिया। बिठूर के आयुक्त ने पेशवा की मुद्रा के प्रयोग पर आपत्ति की। इस पर नाना ने दूसरी मुद्रा बनवाई। किंतु इस मुद्रा को और अधिक आपत्तिजनक माना गया क्योंकि इसमें नाना ने अपने लिए पेशवा बहादुर लिखवाया था। अतः इसके उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया। नाना को मात्र अपनी सामान्य (श्रीमान नाना धांधू बहादुर) की पदवी पर ही संतोष करना और चुप बैठना पड़ा।

अनुगृही आतिथेयी

सरकार ने नाना को कोई भी छूट देने से इंकार कर दिया था किंतु उसके अधिकारी दैव नाना के प्रभूत आतिथ्य का आनंद उठाने के लिए तैयार रहते थे। वे नाना द्वारा आयोजित दावतों और समारोहों में टूट पड़ते थे। भले ही नाना के मन में अंग्रेजों के प्रति विद्वेष रहा हो लेकिन उन्होंने कभी उसे बाहर निकलने का मौका नहीं दिया। वह सदा की तरह खुश मिजाज रहते थे और बहुत प्रेम से कानपुर स्थित अंग्रेज अधिकारी के मनोरंजन की व्यवस्था करते थे। "उनका स्वागत कक्ष बर्मिंघम से सीधे मंगाए गए शीशों और झाड़ फानूस से चमकता रहता।" ट्रेविलियन का कथन है कि "किम ख्वाब और कश्मीरी शाल का सर्वांग कवच धारण किए, मोती और हीरों से जड़ी ईरानी पगड़ी का मुकुट लगाए तथा भूतपूर्व बाजी राव की वह तलवार, जिसकी कीमत लगभग तीन लाख रुपए बताई जाती थी, कमर में लटकाए"[2], नाना अपने अंग्रेज अतिथियों के भव्य आतिथ्य में लगे रहते थे।

"वे व्यवहार में बहुत ही गंभीर और शिष्ट थे"। "अपने अतिथियों के बीच उन्मुक्त भाव से घूमते फिरते, कभी मेजर की पत्नी के स्वास्थ्य के विषय में

1 सेन; वही, पृष्ठ 126
2 ट्रेविलियन, वही, पृष्ठ 53

पूछते थे जो आई नहीं थी, कभी सहायक मजिस्ट्रेट के साथ कोर्ट में हुई किसी हास्यास्पद घटना के विषय में हंसी मजाक करते थे, किसी जज को उसकी तरक्की पर बधाई देते थे या किसी खूबसूरत महिला की उसके आकर्षक आचरण और सौंदर्य के लिए प्रशंसा करते थे"[1]। किंतु उनके अतिथियों को नाना के आतिथ्य का बदला चुकाने का मौका नहीं मिलता था क्योंकि मावब्रे थामसन के अनुसार "वह बदले में उनके किसी भी आतिथ्य को स्वीकार नहीं करते थे क्योंकि उनके सम्मान में सलामी देने की अनुमति नहीं थी"[2]।

कहा जाता है कि नाना अंग्रेज सरकार के देश में और देश के बाहर कार्य-कलाप में, उनके इतिहास, कला धर्म और रीति रिवाज में काफी रुचि रखते थे। यद्यपि नाना को उनकी भाषा का ज्ञान नहीं था फिर भी वह अनेक एंग्लो-इंडियन जनरलों के लिए चंदा देते थे और उन्होंने मिस्टर टाड को अंग्रेजी के जरनल पढ़कर उन्हें सुनाने के लिए नियुक्त कर रखा था।

ट्रेविलियन का कथन है कि यद्यपि नाना अंग्रेज अधिकारी को अपने अनुगृह और आतिथ्य से संतुष्ट रखा करते थे फिर भी "वह एक क्षण के लिए भी उस असम्मान को नहीं भूले थे जो उनके मन में हमारे देश के प्रति विद्यमान था। उनके चेहरे पर मुस्कराहट होने पर भी उनके हृदय के भीतर कं० के निर्णय पर और उन्हें तिरस्कृत करने की बात का क्षोभ बना रहता था। पराजय के क्षण से लेकर प्रतिशोध के क्षण तक उनका जीवन एक लंबी यात्रा थी।"[3]

खैर जैसा भी रहा हो नाना के अनुग्रहों और मैत्रीपूर्ण व्यवहार ने स्थानीय अधिकारियों के मन में उनके प्रति विश्वास और अच्छी राय पैदा कर दी थी। यह विश्वास यहां तक था कि संकट के क्षणों में वे सहायता के लिए उनके पास आए थे।

कानपुर की सामरिक स्थिति

गंगा के दक्षिणी तट पर स्थित कानपुर प्रथम श्रेणी की सैनिक छावनी था। 1857 के बसंत में इसका महत्व और बढ़ गया था। अवध को ब्रिटिश शासन में मिला लेने के बाद कानपुर को सशक्त नगर रक्षक सेना से युक्त कर दिया गया था क्योंकि अब इसका शासन पेशावर से कलकत्ता तक ग्रांड ट्रंक रोड पर ही नहीं था अपितु उन मार्गों पर भी था जो लखनऊ की ओर जाने वाले पुल से मिलते थे। काल्पी होकर उसका संबंध दक्षिण से भी था। इसी सामरिक स्थिति के

---

1 मावब्रे थामसन : दि स्टोरी ऑफ कानपुर, पृष्ठ 48

2 ट्रेविलियन; वही, पृष्ठ 68-69

3 ट्रेविलियन ; वही पृष्ठ 64

विचार से, इसकी रक्षा में पहली, तिरपनवी और छप्पनवीं नेटिव बंगाल इंफैनटरी, द्वितीय केवेलरी (घुड़सवार सेना) और आर्टिलरी (बंदूकची) की एक कंपनी इस नगर की रक्षा के लिए रखी गई थी। देशी सेना में कुल मिलाकर लगभग 3000 सैनिक थे जब कि यूरोपियन आर्टिलरी में 64 आदमी और छ: तोपें थी। मेजर जनरल सर ह्यू व्हीलर इसके कमान आफिसर थे जिन्हें पचास वर्ष की श्रेष्ठ सेवा का अनुभव था। उन्होंने लार्ड लेक के आधीन नौकरी की थी और 1804 में दिल्ली पर कब्जा करने में भाग लिया था। बाद में उन्हें अफगान और सिख युद्धों में भी काफी ख्याति मिली। जैसा कि सर हैनरी लारेंस ने कहा है "वह इस संकट के क्षण में शक्ति की मीनार साबित हुए।"

कानपुर अंग्रेजों की अच्छी खासी बस्ती थी। लगभग 1000 अंग्रेज या अंग्रेजों के अनुयायी (ईसाई) वहां रहते थे। अंग्रेज छावनी-क्षेत्र में रहते थे। उनके पास शासक के लिए जरूरी समझी जाने वाली सभी सेवाएं और साजो-सामान था। एक चर्च था, घुड़दौड़ का मैदान था, थियेटर था, क्लब था, फ्रीमेसन लाज था, रात्रि भोजन और नाचरंग के लिए सभा कक्ष था और एक जलपान क्लब था। यह समुदाय नगर क्षेत्र में निवास करने वाले देशी लोगों से दूर एकांत में रहता था। वे पूर्णत: भिन्न और खुशनुमा सामाजिक जीवन बिताते थे। इन सबको देखकर देशी लोगों के हृदय में असंतोष की भावना भरना स्वाभाविक ही था।

तूफान के लक्षण

1857 के प्रारंभ में देशी सेनाओं की स्थिति उच्चतम स्तर पर असंतोषप्रद थी। ऐसे लक्षण थे मानो कोई दुरात्मा चारों ओर फैल रही हो, अनुशासन शिथिल था और अनुशासनहीनता विद्यमान थी[1]। 1857 की बसंत तक भावी विपत्ति के लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। मंगलपांडे के विद्रोह के पश्चात् चारों ओर अफवाहें फैली हुई थीं, लाखों घरों ने कर्ण परंपरा से भविष्यवाणियों और भावी स्थिति के संबंध में असामान्य चेतावनियां गूंज रही थीं। सभी प्रश्नों से परे ट्रेविलियन का कथन है "कोई गुप्त संगठन विद्रोह के विषय में प्रचार करने और इस प्रकार उसे विज्ञापित करने में लगा था। ऐसी भावना थी कि कुछ होने वाला है। हवा में इसकी गंध भरी हुई थी, लोग समझते थे जो भी होगा अभूतपूर्व होगा।"

काफी पहले भविष्यवाणी की गई थी कि प्लासी के युद्ध के 100 साल बाद कंपनी के शासन का पतन होगा। यह 100वां वर्ष ही चल रहा था।

थोड़े समय पहले दिल्ली के लाल किले से एक फरमान भेजा गया था।

1 वही, पृष्ठ 16

शाही संगीतज्ञों ने स्वयं एक सभा में यह घोषणा संगीत के स्वरों में बांधी थी कि मुसलमानों को कितने अधिकार प्राप्त हैं और अब उनके प्राचीन विश्वास के अनुसार उनकी जाति को कितना अधिक मानसिक अध:पतन और अवनति देखनी पड़ रही थी।

प्रथम प्रहार

ब्रिटिश साम्राज्य पर पहला प्रहार 10 मई को मेरठ में हुआ। 11 मई को दिल्ली पर कब्जा कर लिया गया। विद्रोह की सूचना 14 मई को कानपुर पहुंची। भले ही इस समाचार से व्हीलर को असंतोष हुआ हो, लेकिन इस बात का कोई संकेत दिखाई नहीं पड़ा। उसके सैनिकों के बीच किसी प्रकार की असंतोष की स्थिति नहीं दिखाई पड़ी। गवर्नर जनरल को 18 मई को, जो उसने रिपोर्ट भेजी, उसमें यही लिखा "कानपुर में सब ठीक-ठाक है।"

किंतु जब सरकार से तार मिला कि योरोपियन सेना भेजी जा रही है जिसके रखने की व्यवस्था की जाए, तो उसे विशेष चिंता हुई। यदि सैनिक टुकड़ी के आने की बात चारों ओर फैल गई, तो उसे यह भय था कि सिपाहियों को यह चेतावनी मिल जाएगी कि उनकी निष्ठा पर संदेह किया गया है। 21 तारीख को दूसरी अश्व सेना रोक दी गई क्योंकि चारों ओर यह अफवाह फैल गई थी कि देशी सैनिकों को निकाला जा रहा है और उनके शस्त्र छीने जा रहे हैं। किसी भी क्षण विद्रोह के भड़क उठने का खतरा पैदा हो गया था, ठीक दूसरे दिन लखनऊ से लगभग 55 अंग्रेज और 140 सवारों की एक टुकड़ी वास्तव में आ गई। लेकिन यह टुकड़ी इतनी बड़ी नहीं थी कि उन सैनिकों को इससे भय होता। कानपुर में शांति ही बनी रही, यद्यपि यह तूफान के पहले की शांति थी क्योंकि दोनों पक्ष एक दूसरे पर संदेह कर रहे थे।

अंग्रेजों को भय था कि मेरठ और दिल्ली के विद्रोह की पुनरावृत्ति न हो जबकि सिपाहियों ने अपने साथियों को यह चेतावनी दे दी कि, "वे ध्यान रखें क्योंकि साहब लोग कोई खुराफात करना चाहते हैं।" उन्होंने देखा कि व्हीलर किसी भी आपातकालीन स्थिति से निपटने की तैयारी कर रहे हैं। अंग्रेजों के घर के चारों ओर एक खाई की व्यवस्था की जा रही थी। खजाने और शस्त्रागार के देशी रक्षकों को हटाकर अंग्रेजों को लगा दिया गया। उन पर विश्वास नहीं किया जा रहा था, यह बात स्पष्ट हो गई और इससे उनके मन में खटास पैदा हो गई।

बढ़ता तनाव

दुर्भाग्य ही था कि उसी समय कच्चे आटे की एक खेप बाजार में आई और

उसे सामान्य दरों से कम दर पर बेचा गया। जंगली आग के समान यह अफवाह चारों ओर फैल गई कि आटे में गाय और सूअर की पिसी हुई हड्डियां मिलाई गई थीं। इसमें आश्चर्य नहीं कि सिपाही उत्तेजित हो उठे। यद्यपि इस संदेह का कोई आधार, वह कुछ भी क्यों न रहा हो, साबित नहीं किया जा सका। फिर उनकी शंकाओं का समाधान नहीं हो सका। ऐसे आपसी अविश्वास के वातावरण में रहना अंग्रेजों के लिए दुःस्वप्न जैसा था। हर क्षण यही आशंका थी कि हमला होने वाला है। हल्की चेतावनी या संदेह से वे घबरा जाते थे। "बग्गी पालकी, गाड़ी और हर तरह की सवारियां खाई से युक्त स्थान की ओर आने लगती थीं और लेखक, व्यापारी, महिलाएं दुधमुहे बच्चे, आयाएं और लड़के-बच्चे तथा अधिकारी भी वहां आ जाते थे" और तभी वापस लौटते थे जब चेतावनी गलत सिद्ध हो जाती थी।

नाना का सहयोग

जब तनाव बहुत बढ़ गया तो कानपुर के अधिकारियों ने नाना का सहयोग मांगा। तदनुसार नाना, तात्या और 300 जवानों की सेना तथा दो तोपों के के साथ तुरंत कानपुर पहुंचे। उन्हें नवाबगंज में स्थित खजाने का रक्षक बनाया गया जो परिरोध के स्थानों से लगभग 5 मील दूर था। नाना की सेवाएं स्वेच्छिक थीं या उनकी सहायता और उपस्थिति की मांग अधिकारियों ने की थीं। यह एक ज्वलंत प्रश्न है जिस पर इतिहासकारों ने बार बार विचार विमर्श किया है। आयुक्त के कार्यालयों के एक यूरेशियन क्लर्क शेफर्ड ने पहले विचार के पक्ष में कहा है जब कि मावब्रे थामसन जो सत्ती चौरा घाट कांड के चार उत्तर-जीवियों में से एक थे यह स्पष्ट रूप से कहा कि "नाना ने अपनी सेवाएं स्वेच्छिक रूप से नहीं दी थी अपितु सर ह्यू व्हीलर, से परामर्श करने के पश्चात् मिस्टर हिलडरसन ने यह संदेश उनके पास बिठूर भेजा था कि नाना साहब की सहायता और उपस्थिति की आवश्यकता है।" थामसन का लेखा-जोखा अधिक विश्वसनीय लगता है क्योंकि कमीशन प्राप्त सेना अधिकारी के रूप में उनकी पहुंच कलक्टर और अन्य कमान अधिकारी तक अवश्य रही होगी। यह तात्या के अंतिम कथन के साथ भी मेल खाता है कि हिलडरसन ने नाना को यह अनुरोध करते हुए लिखा था कि वे अपने सहायको के साथ आएं और खजाने की रक्षा करें। इसलिए वे नाना के साथ गये और "कलक्टर ने कहा कि यह उनका सौभाग्य था कि हम (नाना और तात्या) पहुंच गये थे क्योंकि सिपाही अवज्ञाकारी हो गये थे।" यह घटना 22 मई को हुई।

व्हीलर की मोर्चाबंदी

23 मई को सभी अंग्रेज औरतों, बच्चों और अन्य सहयोगियों ने उस कच्चे दुर्ग में शरण ली। इस तरह अपनी मोर्चाबंदी करने को सिपाहियों ने अंग्रेजों के अविश्वास का स्पष्ट उदाहरण माना। वास्तव में यह ऐसा ही लगता है। यह दुर्ग ईंटों से बने एक मंजिले दो बैरकों का था जिसमें से एक में केवल छप्पर की ही छत थी। अचानक हमले से बचने के लिए अंग्रेजों के लिए शरण का यह स्थान बहुत ही जल्दबाजी में बनवाया गया था। इसके चारों ओर की खाई अधिक गहरी नहीं थी, मिट्टी की दीवार कमजोर थी और मुश्किल से आदमी भर ऊंची थी। बुद्धिमान अजीमुल्ला ने इसका नाम दिया था "निराशा का दुर्ग"।

मई के अंत तक यही स्थिति थी। यह आपसी अविश्वास, बढ़ता हुआ तनाव, हड्डियों को कंपाने वाली आशंका का वातावरण था। दोनों पक्ष एक दूसरे से खिंचे हुए थे। कानपुर की स्थिति सोते हुए ज्वालामुखी जैसी थी जो किसी भी क्षण भड़क सकता था और सारे नगर को अपने भीतर समेट सकता था।

5. कानपुर में विद्रोह

निर्णायक घड़ी उस समय आई जब एक अंग्रेज अधिकारी ने नशे की हालत में दूसरी घुड़सवार सेना की एक अग्रानवेशी टुकड़ी पर फायर कर दिया। उसे कोर्ट मार्शल की सजा मिली मगर इस आधार पर छोड़ दिया गया कि उसने ऐसी मानसिक स्थिति में अपराध किया था जब कि वह अपने कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं था। यह सिपाहियों के बीच दूसरी चिंगारी थी। अधिकारी के इस कार्य पर उसे क्षमा क्यों मिली ? कारण स्पष्ट था कि वह शासक वर्ग का व्यक्ति था। अगर किसी देशी अधिकारी ने किसी अंग्रेज पर फायर किया होता तो उसे बिना अधिक सोचे विचारे फांसी दे दी गई होती। "वे क्रोध में भर कर खुले आम यह बड़बड़ाते थे कि किसी दिन दुर्घटनावश उनके अपने सिर भी धड़ से अलग हो जाएंगे।" सिपाहियों ने इसके अपने निष्कर्ष निकाले। वे उत्तेजित तो थे मगर शांत बने रहे। फिर भी उनका जो भी विश्वास अपने स्वामियों के साथ था, उनके हाथ से फिसल गया था।

तीसरी जून को व्हीलर के गुप्तचर यह समाचार लाए कि विद्रोह सिर पर आ गया। स्थान छोड़ने के लिए तुरंत आदेश दे दिया गया। आगामी दिन एक मास के लिए रसद बैरकों में पहुंचा दिया गया और खजाने से 1 लाख रुपया और लाकर घेराबंदी के भीतर रखा गया। 4 जून को दूसरी घुड़सवार सेना ने विद्रोह कर दिया और पहली पैदल सेना भी तुरंत ही उनके साथ मिल गई। इसके बाद 56वीं कंपनी ने भी उनका साथ दिया। यद्यपि अब तक तिरपनवी सेना स्वामीभक्त बनी थी फिर भी भूलवश उन पर फायर कर दिया। "लोग शांतिपूर्वक अपनी लाइनों में खा पका रहे थे। जब कि व्हीलर के आदेश से ऐशे के तोपखाने ने उनके ऊपर फायर कर दिया और वे विद्रोहियों द्वारा हमारे हाथों से खींच लिए गये।[1]"

नाना ने नेतृत्व संभाला

जैसा कि आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है विद्रोही सिपाही तेजी से

---

1 थामसन वही, पृष्ठ 39-40

नवाबगंज स्थित खजाने की ओर बढ़े जिसकी रक्षा नाना कर रहे थे। वह भी सिपाहियों के साथ इस मुक्ति अभियान में सम्मिलित हो गये और सारी नगदी उनके बीच वितरित कर दी। सिपाहियों ने जेल से कैदियों को छुड़ा लिया। शस्त्रागार पर हमला किया और हथियार अपने कब्जे में ले लिए। इसके बाद वे दिल्ली की ओर बढ़े और 5 जून को कल्याणपुर में अपना पहला पड़ाव डाला। व्हीलर ने अवश्य छुटकारे की सांस ली होगी जब उसने देखा कि सैनिक टुकड़ियां दिल्ली की ओर चल पड़ी हैं क्योंकि उसने यह भविष्यवाणी की थी कि अन्य स्थानों के विद्रोहियों के समान कानपुर के विद्रोही भी दिल्ली चलो के विख्यात विद्रोहियों के नारे का ही अनुसरण करेंगे। उसके सारे अनुमान गलत निकले जब दूसरे ही दिन सैनिक टुकड़ियां अचानक कानपुर लौट आईं और नाना ने स्तंभित जनरलों को यह सूचना दी कि वे मोर्चेबंदी वाले स्थान पर हमला करने जा रहे हैं।

वो कौन सी बात थी जिससे सिपाही कल्याणपुर से वापस लौट आए ? वह क्या था जिससे नाना इस प्रकार विद्रोहियों से मिले ? क्या वह कोई गहरी साजिश के अनुसार काम को करने का दिखावा कर रहे थे या वह ऐसी परिस्थितियों में पड़ गये थे जिनकी न उन्होंने कल्पना की थी न ही दूसरे लोगों ने।

कानपुर के विद्रोह के संबंध में हमारी जानकारी अपर्याप्त है। जो कुछ है वह भी विरोधाभासों से पूर्ण है। इतिहासकारों ने इस विषय पर भिन्न भिन्न राय दी है। वे लोग जिनका यह विश्वास है कि 1857 का विद्रोह अंग्रेजों को उखाड़ फेंकने की एक सुसंगत योजना का अंग था, यह कहते हैं कि नाना, जिन्होंने विद्रोह का संचालन किया अंग्रेज अधिकारियों के बीच अपने विश्वास को बनाए रखने के लिए एक अनुग्रही मेजबान का पार्ट अदा कर रहे थे जब कि प्रारंभ से ही वे सिपाहियों के साथ थे। इस तरह वह उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे ताकि वह बदला दे सकें।

उन्होंने सफलतापूर्वक शत्रु की आंखों में धूल झोंकी तथा उस मौके का फायदा उठाया जब उनको शत्रु के खजाने की रक्षा करने का भार सौंपा गया। इस संबंध में एक दूसरी बात भी सुनने में आती है कि "सैनिकों का एक प्रतिनिधि मंडल नाना के विचारों को पक्का करने और यह यकीन दिलाने के लिए उनके पास गया और कहा, "महाराज ! साम्राज्य आपका इंतजार कर रहा है अगर आप हमारे साथ मिल जाते हैं तो, अन्यथा, यदि आप हमारे दुश्मन का साथ निभाएंगे तो आपको मौत ही मिलेगी। और नाना ने उन्हें कहा, "अंग्रेजों का साथ देकर मुझे क्या करना है ? मैं तन मन धन से आप लोगों के साथ हूं।[1]" कई लोगों ने इस कहानी की प्रामाणिकता पर संदेह व्यक्त किया है।

---

1 सेन, वही, पृष्ठ 138

तात्या ने यह बयान दिया कि सिपाहियों ने मृत्युभय दिखाकर नाना को अपना साथ देने और अपने नेतृत्व के लिए मजबूर कर दिया था। नाना के प्रति समर्पित अनुगामी और स्वयं विद्रोही होने के कारण तात्या के अभिकथन को पूर्ण सत्य के रूप में स्वीकारा नहीं जा सकता। चूंकि वे उन अंग्रेजों के विरुद्ध जिनसे वे घृणा करते थे, स्वातंत्र्य संग्राम का संचालन कर रहे थे। अतः उनसे सच बात बता देने की उम्मीद भी तो नहीं की जा सकती। (वस्तुतः यह अद्भुत संयोग है कि विद्रोह के चारों प्रमुख नेताओं—नाना, तात्या, झांसी की रानी और बहादुर-शाह—के यह कथन एक जैसे हैं कि वे विद्रोही सैनिकों की दया पर थे, फिर भी संदेह से परे, जी जान लगाकर युद्ध किया।)

फारेस्ट ने भी नाना के बलात्मत परिवर्तन की इस कहानी पर विश्वास नहीं किया। काए ने, जिनका यह विश्वास था कि सभी कुछ पूर्व नियोजित था, यह कहा है कि "महीनों और सालों पहले से ही, यानी उस समय से जब से उनका इंगलैंड का मिशन असफल होता दिखाई देने लगा था, वे (नाना और उनके वकील अजीमुल्ला) सारे देश में षडयंत्र का शांतिपूर्वक ताना-बाना बुनने में जुट गए थे [1]।

सेन का भी यही विचार है कि घटनाओं के विश्लेषण से यह पता लग जाता है कि सिपाहियों को एक उच्च परिवार के नेता की जरूरत महसूस हुई और उन्होने नाना के भय और महत्वाकांक्षा को उभारा जो शुरू में तो कुछ हिचकिचाए किंतु बाद में उनके साथ मिल गए।"[2] इस तरह सारी बातें रहस्य के पर्दे में छिपी हुई हैं। हम निश्चयपूर्वक यही कह सकते हैं कि जब नाना या उनके एजेंटों द्वारा प्रोत्साहित किए जाने पर विद्रोही फौजें 6 जून को कानपुर वापस लौटी तो नाना ने उनका नेतृत्व संभाल लिया था। जैसे ही वे कल्याणपुर से वापस की ओर मुड़े उन्होंने "राजा कहकर नाना की जय-जयकार की और फौज के तीन अधि-कारियों ने अपनी अपनी फौजों के नेतृत्व की बागडोर अपने हाथों में ले ली—सूबे-दार टिक्का सिंह दूसरी रिसाला के जनरल बने, जमादार दुर्गजन सिंह और गंगादीन क्रमशः तिरपनवीं और छप्पनवीं देशी पैदल सेना के कर्नल हो गए। हाथी के हौदे पर झंडे के भव्य प्रदर्शन द्वारा, डुग्गी पिटवाकर यह घोषणा की गई कि नाना साहब का शासन हो गया है।

उसी दिन नाना ने जनरल व्हीलर को एक पत्र भेजा कि वह मोर्चाबंदी पर हमला करने जा रहे थे और इस प्रकार मोर्चाबंदी की घेराबंदी शुरू हुई।

1 सरजार काए: वही खडं I पृष्ठ 578

2 सेन, वही पृष्ट 138

"निराशा का दुर्ग" की घेराबंदी

मोर्चे की दीवारें, जैसा पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, कच्ची मिट्टी की बनी थीं। इस निराशा के दुर्ग में लगभग 900 प्राणी दुबके हुए थे। उनमें से लगभग आधे तो स्त्रियां और बच्चे थे, 400 लड़ने लायक अंग्रेज थे, जिनमें से 90 अशक्त थे। बाकी भारतीय थे जिनमें 50 नौकर-चाकर भी थे। इस छोटी सी टुकड़ी को 3,000 सशस्त्र सिपाहियों ने घेर रखा था। यद्यपि शत्रु पक्ष संख्या में नगण्य था फिर भी उनकी आत्मा कमजोर नहीं थी। अंग्रेजों ने इस विषम परिस्थिति में भी दृढ निश्चय और हठपूर्वक युद्ध किया। प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति से, उसका व्यवसाय चाहे जो भी रहा हो, लड़ने के लिए अपेक्षा थी। उनके पास शस्त्र और गोलाबारूद पर्याप्त था, किंतु खाद्य सामग्री की कमी थी। शुरुआत के कुछ दिनों के बाद ऐसे मौके भी आए जब खाने के लिए भटकते हुए बैल या घोड़ा या आम कुत्ता को भी भोज्य बना लिया गया। अनेक तो भूख-प्यास से ही मर गए थे। दूसरी समस्या थी पानी की। जून की चिलचिलाती तपन में, दुर्ग के भीतर घिरे हुए लोग प्यास की वजह से बिलबिला उठते थे क्योंकि मोर्चेबंदी के भीतर केवल एक ही कुआं था और उसके पास भी कोई रक्षक दीवार नहीं थी। जो भी पानी भरने की कोशिश करता था वह चौकस बंदूकचियों का आसानी से निशाना बन जाता था। तपती धूप से बचने के लिए बैरक की पतली दीवारें बहुत ही कम बचाव कर पाती थीं, परिणामत: अनेक व्यक्ति तेजधूप और लू के शिकार बन गए।

इतनी परेशानियां ही कम नहीं थी कि छप्पर वाली छत में आग भी लग गई, क्योंकि उस पर सिपाहियों की गोलियों की बौछार आ रही थी और आग फैल गई। मृतकों का दफ़नाना दूसरी भारी समस्या थी। अत: रात की आड़ में, मृतकों को ऐसे ही, नजदीक के एक दूसरे कुएं में डाल दिया जाता था।

नफरत और प्रतिशोध का यह युद्ध बड़ा ही भयावह था। दोनों पक्षों ने मनुष्यता को परे ढकेल दिया था। थामसन ने, जैसा अभिलेखों में है कहा है कि कैदियों को मुख्यालय के प्रति कोई निर्देश दिए बिना अशिष्टतापूर्वक समाप्त कर दिया जाता था।

तात्या की परीक्षा की घड़ी

यह घेराबंदी 6 से 25 जून तक चली। इसमें तात्या को पहली बार अपनी सैनिक योग्यता के प्रदर्शन का मौका मिला। ऐसा लगता कि इसके बाद अब नाना के सैनिक सलाहकार के रूप में तात्या ने अंग्रेजों के गैरिसन पर हमला करने की योजना बनाई। इस काम में उन्हें बंगाल आर्मी के कुछ अनुभवी अधिकारियों से

पूरी तरह सहयोग मिला। सूबेदार टिक्का सिंह (जो अब जरनल बना दिए गए थे) जमादार दुर्गंजन सिंह और गंगादीन (जो अब कर्नल थे) नाना की निजी सेना के कमांडर ज्वाला प्रसाद, इन सभी को लंबी सैनिक सेवा का अनुभव था। तात्या ने एक स्थानीय धनी मुसलमान नन्हें नवाब उर्फ मोहम्मद अली खान का भी समर्थन प्राप्त कर लिया था और उन्हें गोलंदाज फौज का कमांडर बना दिया गया था। उनके पास अवध की गोलंदाज सेना से तोपचियों और बरकंदाजों का एक दस्ता भी था जो तोपें चलाने में माहिर था। तात्या का पलड़ा और भी भारी हो गया जब अनेक स्थानीय जमींदारों के सशस्त्र रक्षक भी आ-आकर नाना के साथ शामिल हो गए। थोड़े समय बाद ही अवध के सैनिकों की नादिरी और अख्तरी रेजीमेंट भी मीर नवाब की कमान में उनसे आकर मिल गई। अपने कब्जे में पहले से ही मैगजीन (शस्त्रागार) होने के कारण वे हथियारों और गोला-बारूद से अच्छी तरह लैस थे।

तात्या ने ब्रिटिश गैरिसन पर हमला करने के लिए पिल पड़ने में समय नहीं खोया। शस्त्रागार से तोपें ले आई गई और 6 जून को सुबह 10 बजे हमला कर दिया गया। मोर्चेबंदी को तोपखाने से घेर लिया गया था और पार्श्वस्थ दूसरे भवनों, बंगलों और चारदीवारियों पर सैनिको ने मोर्चा जमा लिया था। पहला सीधा आक्रमण 12 जून को किया गया, रिसाले ने हमले का नेतृत्व किया किंतु शत्रु पक्ष द्वारा अंधाधुंध गोलीबारी करके दो टूक जवाब दिया गया। तब लगातार सशक्त बमबारी और शत्रु पक्ष की गोलियों का मुंह बंद कर देने की युद्ध नीति अपनाई गई।

भारी गोलाबारी करने से शत्रु के खेमे में तबाही मच गई। समाप्त होते जा रहे साधनों और तेजी से कम हो जा रहे सैनिकों के कारण घिरे हुए अंग्रेजों को ज्यादा समय तक बचे रहने की उम्मीद नहीं रह गई थी। व्यग्रतापूर्वक निकटस्थ शहर, लखनऊ से मदद के लिए अपीलें की गई। किंतु लखनऊ तो अपनी ही मुसीबत में फंसा था अतः कोई सहायता न मिल पाई। कलकत्ता से गवर्नर जनरल ने मदद भेजने का वायदा किया था किंतु वहां से तो संचार व्यवस्था ही ठप्प हो गई थी।

नील के अत्याचार

एक ओर कानपुर से तरस भरी अपील की जा रही थी और दूसरी ओर बनारस और इलाहाबाद में नील विद्रोह को कुचलने में व्यस्त था जिसमें लूट आगजनी और हत्याकांड की क्रूर लहर फैल गई थी। मेरठ और दिल्ली में विद्रोह प्रारंभ होने के तुरंत पश्चात् गवर्नर जनरल ने प्रथम क्यूजिलर, मद्रास

से नील को बुला लिया था और उसे विद्रोह का दमन करने के लिए भेज दिया था। निर्दयी और बेरहम अधिकारी नील का अधकुचली कार्यवाहियों में विश्वास नहीं था। वह 3 जून को बनारस पहुंचा। लखनऊ में पहले ही विद्रोह शुरू हो चुका था और दूसरे ही दिन आजमगढ़ में विद्रोह हो जाने की खबर मिली। नील ने बज्रमुष्टि के साथ विद्रोह दबा दिया किंतु इतने पर भी उसे संतोष नहीं हुआ। उसने आतंक का वास्तविक शासन स्थापित कर दिया, राह में जो भी आया नष्ट हो गया। काए के अनुसार, उसने (कानपुर) के रास्ते में पड़ने वाले उन सभी स्थानों पर जो शत्रुओं के कब्जे में थे, हमला करने और उन्हें विनष्ट करने के लिए रेनॉड को आदेश दे दिए। "रास्ते के आसपास के अनेक गांवों में आग लगा दी गई और मानवमात्र भी दिखाई देने के लिए शेष न रह गया। ...... सैनिक अधिकारी इस तरह से अपराधियों का शिकार कर रहे और उन्हें फांसी पर लटका रहे थे मानो वे आवारा कुत्ते, या गीदड़ या उनसे भी नीचे की श्रेणी के कीड़े-मकोड़े हों।"[1] ऐसा कार्य का कथन है। स्वैच्छिक जल्लादों की पार्टियां जिले में बिखर जाती थी ......लोग शेखी बघारते थे कि उन्होने कितने लोगों को मारा, "वह भी बिल्कुल कलात्मक ढंग से" आम के पेड़ ही टिकटियां थी और उन्हें हाथी के पांव तले रौंदा जाता है। शिकार को इस तरह लटका दिया जाता था जिस तरह "आठ (8) का अंक हो।" इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं हिंदुस्तानी अंग्रेजी सिपाहियों को "इंसान के भेष में शैतान" कहते थे। जब नील 9 जून को इलाहाबाद से आगे बढ़ा तब उसे सूनी सड़कों पर सवारी के लिए घोड़े न मिल पाए और वे सब उन पालकी गाड़ियों में चल पड़े जिन्हें हिंदुस्तानी खींच रहे थे।" वह तेजी के साथ कानपुर की ओर नहीं बढ़ पाया क्योंकि स्थानीय लोगों के सहयोग के बिना वह माल असबाब ढोने के लिए जानवर और गाड़ियां नहीं इकट्ठी कर सका था।

आइए कानपुर की ओर। 23 जून को–प्लासी के युद्ध के ठीक सौ साल बाद दूसरा जोरदार हमला किया गया किंतु, इसका भी जवाब समान प्रबलता से दिया गया था। यद्यपि अंग्रेजी रक्षक सेना इस अग्नि परीक्षा के बाद जीवित बच गई किंतु वह बुझते चिराग की लौ मात्र थी। दूसरे ही दिन व्हीलर ने "जान बचाओ" का अंतिम एस ओ एस (सेव अवर सोल) लखनऊ भेजा। यह निराशा की चरम स्थिति थी जब उसने लिखा "हमारी ब्रिटिश आत्मा ही शेष बची है और वह सदा नहीं बनी रहेगी। यह निश्चित है कि हम मरेंगे किंतु चूहों की तरह बिल में घुसे रह कर नहीं।"

---

1 काए; वही पृष्ठ 135-36

व्हीलर का आत्म समर्पण

राहत मिली तो किंतु वहां से नही जहां से उम्मीद थी अपितु शत्रुओं की ओर से। 25 जून को, नाना ने कानपुर के संपन्न घराने की एक महिला, श्रीमती ग्रीनवे द्वारा यह संदेश भिजवाया कि "वे सभी जो लार्ड डलहौजी के कार्यों से किसी तरह संबद्ध नहीं हैं और अपने हथियार रखने के लिए तैयार है सुरक्षा पूर्वक इलाहाबाद की ओर भेज दिए जाएंगे।" दूसरे ही दिन, नाना के प्रतिनिधियों के रूप में, अजीमुल्ला और ज्वाला प्रसाद को संधिवार्ता के लिए भेजा गया। आत्म समर्पण की एक संधि पर हस्ताक्षर किए गए जिसके अनुसार व्हीलर ने अपनी गैरिसन, तोपें और खजाना सौंप देने का करार किया और हर आदमी को अपने साथ अपनी बदूक और 60 राउंड गोलियां ले जाने की अनुमति दी गई। बदले में, नाना ने वायदा किया कि वह स्त्रियों, बच्चों और घायलों को ले जाने के लिए आवश्यक सवारी की व्यवस्था करेंगे और खाने पीने के सामान सहित घाट पर नावें तैयार रखेंगे।

सती चौरा घाट पर कत्ले आम

27 जून को, शरणार्थियों को हाथियो और पालकियों पर सती चौरा घाट, जहां से उन्हें नाव पर चढ़ना था, ले जाया गया, वहां पर 40 नावें पहले से ही तैयार रखी गई थीं। इसी के बाद, अपराध का वह दारुण दौर चला जिसकी निंदा सारी दुनियां में की गई। वस्तुत: हुआ क्या था इसे कभी भी, कोई भी न जान पाएगा। मावब्रे थामसन और डेलाफोसे ही ऐसे भाग्यशाली थे जो कत्ले आम से बच सके और इसकी भयानक कहानी बताने के लिए जिंदा रहे। उनके कथनानुसार, नदी का पाट कम चौड़ा था, नावों पर तागढ़ थी, और सवारियों को पानी से होकर बड़ी मेहनत से वहां तक पहुंचना पड़ता था। अपने भूतपूर्व शासकों की दुर्दशा देखने के लिए घाट पर भारी भीड़ इकट्ठा हो गई थी। "हर देव" मंदिर के चबूतरे पर बिछी एक दरी के ऊपर तात्या, बालाराव, अजीमुल्ला और ज्वाला प्रसाद बैठे थे। नाना वहां पर नहीं थे। जैसा थामसन ने लिखा है "जैसे ही आखरी आदमी नाव पर चढ़ा 'चलो' शब्द तो था किंतु तट से एक संकेत भी था—सभी देशी नाविक नावों से कूद पड़े और किनारे की तरफ बढ़ने की कोशिश करने लगे। हमने उन पर तुरंत गोली चला दी।" उन्हीं सैनिकों ने, जो शरणार्थियों को अपनी अभिरक्षा में घाट तक लाए थे, उन पर गोली चलानी शुरू कर दी। बदले में जवाबी गोलियां चली। इसके बाद ही हुल्लड़ मच गया। सैनिक और घाट पर घात लगाए तोपें कार्रवाई में आ गईं और नावों की छप्पर वाली छतों पर आग लग गई। कुछ लोग जलकर मर गए जब

कि बहुत से लोग बंदूकों से छूटने वाली गोलियों के आग में जल-भुन गए। लगभग 200 लोग बाकी बचे, जिनमें अधिकतर औरतें और बच्चे थे, कैद कर लिए गए। केवल एक ही बोट बचकर आगे बढ़ सकी, उसे भी बाद में पकड़ लिया गया। इसी बीच उसमें से चार सवार निकल भागे थे और अपनी जान बचा ली थी।

बीबीघर कत्ले आम

उन 200 व्यक्तियों में से, जिन्हें कैद कर लिया गया था, पुरुषों को तो गोली मार दी गई थी और स्त्रियां तथा बच्चों को (जिनकी संख्या लगभग 150 थी) बीबीघर नाम के एक छोटे से स्थान पर रखा गया था। 17 जुलाई को जब मेजर जनरल हेवलाक की सेना कानपुर के पास पहुंची और विद्रोही नेताओं को विश्वास हो गया कि अब वे कानपुर पर ज्यादा समय तक कब्जा न रख पाएंगे तो सिपाहियों की एक टुकड़ी को कैद खाने की खिड़कियां और दरवाजों से गोली चलाकर सभी कैदियों को मार डालने के लिए भेजा गया। किंतु सिपाहियों ने केवल कमरे की दुछत्तियों पर ही गोली बरसाई। इसलिए कुछ कसाइयों को बुलाया गया, आदेश किसका था यह पता नहीं और उन्होंने अभागे कैदियों को हलाल कर डाला। दूसरे दिन उनकी लाशें एक नजदीक के कुएं में डाल दी गई।

कानपुर में अत्याचार

कानपुर में हुए इन दोनो कत्ले आमों की 1857 की घटनाओं के बीच सबसे अधिक बदनामी हुई है। इंगलैंड और भारत में स्कूली बच्चे इन दुःखद घटनाओं के बढ़ा चढ़ा कर किए गए वर्णन पढ़ पढ़ कर ऊब गए है जब कि इतिहासकारों के क्षेत्र के बाहर कुछ ही लोग भारतीयों पर हुए इनसे भी अधिक नृशंस अत्याचारों के बारे में जानते हैं, जिनमें मारे गए लोगों की संख्या कानपुर में मृत इन व्यक्तियों से कई गुनी अधिक थी।

शायद नील के जंगली और अंधाधुंध अत्याचारों के कारण ही विद्रोहियों ने इन कत्लेआमों का अपराध किया। और उसका पश्चात्वर्ती प्रतिशोध भी, जब कि उसने अपने शिकारों को मारे गए लोगों का खून चाटने के लिए मजबूर कर दिया, उतना ही निंदनीय था।

किंतु भारत में स्थित अंग्रेजों की स्मृति में कानपुर का कुआं सदा ही बना रहा। इससे उनके इस देश के निवासियों के प्रति भावी दृष्टिकोण पर भी प्रभाव पड़ा। ऐसा क्यों ? निर्दयता, निश्चय ही, किसी विशिष्ट राष्ट्र या किसी विशिष्ट

युग की बुराई नहीं है और युद्ध में प्रथम मृत्यु तो मानवता की ही होती है और वह भी विशेष रूप से तब, जब कि युद्ध राष्ट्रीय या जातीय हो। रसेल का एक उद्धरण देखे, "हमने एक जमाने में यहूदियों को उसी तरह यंत्रणा दी थी, जिस तरह हिंदुओं और मुसलमानों ने अब ईसाइयों के साथ किया है। और हमारे धर्म यौद्धाओं ने यदि नाइटों ने नहीं तो कम से कम उनके बर्बर अनुवादियों ने मुसलमानों की तंग भावना को भी मात कर दिया। असहाय गैरिसनों का, जिन्होंने संध पत्र के तहत आत्म समर्पण किया, सदा ही कत्लेआम किया गया। मध्यकालीन यूरोप के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएंगे जहां ऐसे ही नृशंस हत्याकांड हुए जैसा कि कानपुर का था। सभ्यता के इतिहास के दौरान इनके समान ही हत्याकांडों के अधिक उदाहरण मिलेंगे और भी उन राष्ट्रों के बीच जो अधिक साथ होने का दावा करते है।" शायद रसेल ने यह कहते हुए इस दुःखद स्थल का ही संकेत किया है। वास्तव में कानपुर के कत्लेआमों की इस अतिशयोक्ति में तथ्य इतना ही है कि यह कुकर्म एक शासित जाति द्वारा काली जाति द्वारा किया गया जिन्होंने अपने प्रभुओं का खून बहाने की हिम्मत दिखाई। यहां पर मात्र जी हुजूरिया युद्ध नहीं था अपितु धर्म युद्ध था, जाति युद्ध था, और प्रतिशोध तथा नफरत का युद्ध था जिसमें राष्ट्रीय स्तर पर विदेशी शासन का जुंआ उतार फेंकने की कोशिश की गई थी।

ये कत्लेआम इतिहास के निर्विवाद तथ्य है। किंतु उनका अतिशयोक्ति पूर्ण सनसनी खेज और बढ़ा चढा वर्णन जिसकी रंचमात्र भी छानबीन संभव नहीं है, पाठक को किसी निश्चित दिशा में नहीं ले जा पाता। इतिहासकारों ने इन अपराधों के लिए नाना को जिन्हें पिशाच, शैतान और लुच्चा कहा गया है, दोषी ठहराया है जब कि अन्य इतिहासकारों ने सती चौरा घाट पर हुए अत्याचारों के लिए अजीमुल्ला, ज्वाला प्रसाद और बाला साहब के साथ तात्या टोपे के ऊपर आरोप लगाया है। कहा गया है कि अंग्रेजों को घाट तक पहुंचाने और फिर उनकी सामूहिक हत्या कर देने के लिए एक पूर्वनिश्चित दुरभि संधि थी। यद्यपि यह कहानी बहुत ही सारहीन साक्ष्य के आधार पर गढ़ी गई है फिर भी घाट पर सैनिकों और तोपों की त्वचा नदी के दूसरे तट पर चौहान जमीदारों की उपस्थिति से कुछ पूर्वयोजना की गंध आती है। किंतु क्या नाना अथवा तात्या का इसमें हाथ था? यह तथ्य शंका से परे साबित नहीं हो सका। किसी सबूत के अभाव में, जान लैंग का कहना है, "मुझे अफसोस है और विशेष रूप से इस विषय पर उपलब्ध पत्रों को पढ़ने के बाद, कि मैं उस पैशाचिक अत्याचार और वीभत्स कत्लेआम के लिए इस व्यक्ति (नाना) को दोषी न ठहरा पाऊंगा।"[1]

1 जे० लैंग ; वही, पृष्ठ 412—13.

कर्नल माड ने भी इस हत्याकांड में नाना का हाथ होने के विषय में संदेह व्यक्त किया है।

घाट पर हुए हत्याकांड में तात्या का हाथ होने के बारे में कुछ प्रत्यक्ष दर्शियों ने कहा है कि तात्या से, जो सारी घटना को देखते हुए मंदिर की दुहत्ती पर बैठे हुए थे, संकेत मिलते ही मारकाट की शुरूआत हुई। जैसा सभी को पता है नौकाओं के लिए व्यवस्था करने का भार तात्या को सौंपा गया था। तात्या के बयान के अनुसार, "(मैंने) 49 नौकाएं तैयार करवाई और सभी के नौकाओं पर चढ़ जाने के बाद मैंने उन्हें इलाहाबाद की ओर जाने के लिए कह दिया। सिपाही नदी में कूद गए और कत्लेआम शुरू कर दिया।" जो संकेत तात्या ने दिये थे वह बोटों के चलने के लिए था लेकिन उसके कत्लेआम करने का संकेत होने का गलत अर्थ लगाया गया। फारेस्ट ने लिखा है, "विबर्ट (जो नाव पर सवार होने वाला अंतिम व्यक्ति था)" औफ कहा जो महीनों की अविश्वसनीय कठिनाइयों और कैद से छुटकारा पाने पर मुक्ति का स्वागत करने के लिए था ······· किंतु आदेश का यह शब्द विश्वासघातियों के कानों तक पहुंच गया। बिगुल की अशुभ आवाज सुनाई पड़ी और एक संकेत पाते ही फौज ने नावों पर हमला कर दिया।

मावब्रे थामसन की गवाही के अनुसार जैसा पहले भी उल्लेख किया जा चुका है यह तो अंग्रेज थे जिन्होंने पहले गोली चलाई क्योंकि नाविकों ने नावें छोड़ दी थी। हो सकता है इस बात से सिपाही उत्तेजित हो गए हों जो नील के बर्बर अत्याचारों की खबरें पाकर पहले से ही जले भुने बैठे थे। जैसा सेन ने कहा है यदि सैनिकों का प्रधान होने के कारण नाना उस कुकृत्य के लिए कानूनन दोषी कहे जा सकते हैं तो नैतिक अपराध में नील का भी उतना ही हिस्सा था।

सर जार्ज ट्रेवेलन के नमक मिर्च लगा कर पेश किए गए लेखे जोखे के, जिसका प्रमुख आधार नानक चंद की डायरी और नार्थ वेस्टर्न प्राविंस के पुलिस आयुक्त कर्नल विलियम्स के समक्ष दिए गए 63 गवाहियों के बयान ही हैं उत्तर में हम केवल फारेस्ट को ही उद्धृत कर सकते हैं जिसने लिखा कि वे (बयान) विसंगतियों से पूर्ण थे और उन पर बड़ी सावधानी से विचार करना होगा। सरकारी गोपनीय रिपोर्टों, गैर सरकारी परीक्षाओं और प्राइवेट लोगों की अर्जियों से यह पता लग जाता है कि वे यद्यपि गहरी काली नहीं है जितनी रंग कर बनाई गई है। साक्ष्य से यह भी साबित हो जाता है कि गारद के सिपाहियों ने उनकी (बीबीघर के कैदियों की) हत्या करने से इंकार कर दिया था। यह घृणित अपराध नाना की गारद के पांच गुंडों ने किसी दरबारी की उक्साहट पर किया था, शायद कानपुर की अपनी पराजय पर नाना के बिठूर भाग जाने के पश्चात्।

हम भी उसी निष्कर्ष तक पहुंचते है जो सर जार्ज कैम्पवैल ने अपनी मेमायर्स में निकाला है। हमें दो बातें याद रखनी होंगी : एक तो यह, कि ऐसा निष्ठुरता में नहीं किया गया था अपितु क्रोध और निराशा के उस क्षण में किया गया था जब हेवलाक ने विद्रोहियों को हरा दिया था और आगे बढ़ा आ रहा था : और दूसरी यह कि हमने ऐसे कार्यों हेतु उत्तेजित करने के लिए बहुत कुछ किया था। बाद में बड़ी सावधानी से जांच की गई थी और हम उस मामले में किसी पूर्व-धारणा या निर्देश को खोज पाने में असफल रहे हैं। नील ने तो कत्ले आम से भी अधिक निंदनीय कार्य किये थे।[1]

1 रसेल द्वारा उद्धृत सर जी कैम्पवैल के मेमायर्स आफ माई इंडियन कैरियर में से, वही, भूमिका, पृष्ठ 1।

6. तात्या—सैनिक सलाहकार के रूप में

कानपुर शहर से अंग्रेजों के अधिकार का अंतिम चिह्न भी मिट जाने के साथ ही मराठा साम्राज्य को पुनः स्थापित करने का नाना का स्वप्न सच होता हुआ प्रतीत हुआ। 30 जून को पेशवा काल की शानो-शौकत और धूमधाम के साथ उन्हें पेशवा के रूप में घोषित किया गया। इस भव्य दृश्य को देखने के लिए कानपुर और आसपास के गावों के लोग भारी संख्या में बिठूर की ओर उमड़ पड़े। जबकि बिठूर में दावतें हो रही थी और आमोद प्रमोद का वातारण था तथा पेशवा के राज दरबार से घोषणाएं की जा रही थी, उसी समय तात्या सतर्क और होशियार थे और नवोदित मराठा साम्राज्य के संबंध में मृगतृष्णा को स्वीकार नहीं कर सके थे। वह जानते थे कि अपना प्रभुत्व पुनः स्थापित करने के लिए अंग्रेजी फौजें पुनः तैयारी करके और जोर शोर के साथ हमला करेगी। इसी वजह से उन्होंने समय नहीं खोया तथा कानपुर की रक्षा के लिए अपनी फौजों को व्यवस्थित करने के काम में लग गए।

सत्ता हाथ आते ही, नाना ने शासन की बागडोर संभाल ली। उन्होंने पूर्णतः बिखर गए प्रशासन को नए रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। उनका पहला काम कानून और न्याय की व्यवस्था करने का था और नाना ने अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए कड़ी कार्रवाई की। उन्होंने अपने भाई बाबा माढ़ के अधीन आपराधिक मामलों को निपटाने के लिए एक न्यायालय का गठन किया और अजीमुल्ला तथा ज्वाला प्रसाद को अतिरिक्त न्यायाधीश नियुक्त किया। होला सिंह कोतवाल तथा वसीउद्दीन काजी के रूप में नियुक्त किए गए। सेना के लिए रसद का इंतजाम मौला नाम के एक नागरिक को सौंपा गया। पुरानी हिंदू आपराधिक विधि, जो राज्य के अनुयोजन के पहले लागू थी, पुनः प्रारंभ की गई। चोरों और कुकर्मियों को न्यायालय में पेश किया जाता था और जो अपराधी सिद्ध हो जाते थे उन्हें अंगच्छेद की सजा दी जाती थी और गधे की पीठ पर बैठा कर सड़कों पर घुमाया जाता था।

इतना सब होने पर भी, नाना का राज्य हिंदू राज्य नहीं था। विद्रोह के प्रारंभ होते ही, इस्लाम का हरा झंडा भी फहराया गया था परंतु पुरानी सांप्रदायिक उग्रता का नामोनिशान भी न था। अनेक कट्टर मुल्ला भी थे जो नाना

के दरबार में हाजिर होते तथा उनके शासन का पूरी तरह समर्थन करते थे। ऐसा मालूम होता था मानो वे सभी यह चाहते थे कि पुराना समय अपनी सारी समस्याओं सहित वापस आ जाए और पुराने जमाने के सुदिन फिर लौट आएं।

तात्या की रक्षा व्यवस्था

हमलावर अंग्रेजों के साथ पहला मुकाबला 10 जुलाई को हुआ। इस तरह तात्या को अपनी सुरक्षात्मक व्यवस्था करने के लिए मुश्किल से पंद्रह दिन का समय मिला। उनकी फौज में सैनिकों की संख्या लगभग 20,000 हो गई थी, इनमें से अधिकांश जमीदारों के नौकर चाकर और देशी लामबंदी के लोग थे। हथियारों का अभाव नहीं था। उन्हें गुप्तचरों के फैले जाल की भी सेवाएं प्राप्त थी। इसमें शक नहीं कि तात्या के पास अच्छी खासी संख्या में सेना थी। मगर क्या वह अंग्रेजी सेना के समान सुसंगठित और अनुशासित हो सकती थी जिसकी बागडोर अनेक अनुभवी अधिकारियों और युद्ध विजेताओं के हाथ में थी जिनके पास उनसे अच्छे हथियार उपलब्ध थे? व्हीलर पर विजय प्राप्त करने से विद्रोही सेनाओं का मनोबल ऊंचा हो गया था किंतु उनकी विद्रोही भावना मात्र ही ऐसी सेना जो उखाड़ फेंकने के लिए पर्याप्त न थी जो बने रहने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाकर युद्ध कर रहे थे। तात्या को वास्तविक युद्ध का कोई सामरिक अनुभव नहीं था। फिर भी उन्होंने कानपुर की सुरक्षा के लिए कुशलता-पूर्वक योजनाबद्ध तरीके से मोर्चा बंदी की। उन्होंने अपने आदमियों को सामरिक महत्व के स्थलों पर इस प्रकार रखा कि विरोधियों ने भी उनकी कुशलता के लिए सराहना की।

हेवलाक का अभियान

जिस समय तात्या इस तरह अपनी मोर्चाबंदी में व्यस्त थे उसी समय हेवलाक कानपुर पर पुनः कब्जा करने और लखनऊ के छुटकारे के लिए आगे बढ़ने की तैयारी कर रहा था। हेवलाक को चालीस वर्ष का सेना का अनुभव प्राप्त था और उसने अफगानिस्तान, पंजाब और पर्सिया में विशेष ख्याति प्राप्त की थी। वह अतिसंयमी व्यक्ति था, लेडी कैनिंग के अनुसार उसका दुबला पतला शरीर बूढ़ा होने पर भी अत्यंत सक्रिय था, मानो वह इस्पात का बना हो। दबंग नील को उसकी जगह बनाए रखने के लिए और खोए हुए नगरों को पुनः प्राप्त करने के लिए ऐसे ही व्यक्ति की जरूरत थी।

हेवलाक 30 जून को, जिस दिन नाना को पेशवा घोषित किया गया था, इलाहाबाद पहुंचा। व्हीलर के आत्म समर्पण की सूचना शीघ्र ही उसके पास

पहुंची । उसके 7 जुलाई को इलाहाबाद छोड़ने के पहले ही, कैप्टन रेनार्ड के नेतृत्व में एक अग्रिम दस्ता कानपुर के लिए चल पड़ा था ।

फतेहपुर का युद्ध

रेनार्ड 10 जुलाई को फतेहपुर के बाह्यांचल में पहुंच गया । स्टेशन विद्रोहियों के हाथ में था । न्यायाधीश ठक्कर को छोड़कर बाकी सभी अंग्रेज अधिकारी, सिपाहियों के विद्रोह करते ही स्टेशन छोड़ चुके थे । रेनार्ड में संयम नहीं रह गया था । वह तुरंत स्टेशन पर कब्जा करके अपने लिए ख्याति अर्जित करना चाहता था । अग्रिम दस्ते को नष्ट भ्रष्ट करने के लिए ज्वाला प्रसाद के नेतृत्व में तात्या के सैनिकों की भारी संख्या इंतजार कर रही थी । हालांकि रेनार्ड उस जाल से बच निकला जो तात्या ने उसके लिए बिछा रखा था । अगर उसने कोशिश की होती तो एक भी आदमी कहानी बताने के लिए जिंदा न बच पाता ।

12 जुलाई के प्रातःकालीन धुंधलके में, हेवलाक और रेनार्ड मिल गए, इस तरह तात्या की योजना ध्वस्त हो गई । ज्वाला प्रसाद को हेवलाक के आ पहुंचने की जानकारी न मिल पाई । केवल रेनार्ड के सैनिकों को ही समझकर उन्होंने सामने से गोलाबारी शुरू कर दी और उसके बगली दस्ते को भयभीत कर दिया । जल्दी ही सम्मिलित फौजें उस पर टूट पड़ी । दुश्मन की बैटरी ने उसकी टुकड़ियों पर कहर ढा दिया और चारों तरफ से शत्रु की गोलाबारी ने उन्हें भून डाला । माड की एक गोली ज्वाला प्रसाद के हाथी को लगी । सैनिकों ने, अपने नेता को गिरता हुआ देखा तो अपनी अपनी बंदूकें छोड़कर युद्ध भूमि से पीठ दिखा गए । घुड़सवारों ने बड़ी बहादुरी से युद्ध किया मगर दुश्मन की बंदूकों की गोलियों ने उन्हें तितर बितर कर दिया । ग्यारह तोपों के साथ साथ नगर पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया । फतेहपुर हेवलाक की पहली जीत और नाना के सैनिकों की पहली हार थी और इससे उनके मनोबल पर भारी प्रभाव पड़ा ।

औंग में संघर्ष

दूसरे दिन औंग में जम कर मुकाबला हुआ । फतेहपुर की मुठभेड़ के पश्चात् ज्वाला प्रसाद, नई टुकड़ियों की वृद्धि के साथ, औंग की ओर पीछे हट गए । औंग की स्थिति काफी सुरक्षात्मक थी, गांव के सामने खाई बंदी थी जिस पर दो नौ-पाउंडर तोपें लगाई गई थी । गांव के दोनों बगल में सघन वृक्षों से पूर्ण, चहार दीवारी वाले घने बगीचे थे जो सिपाहियों के लिए अच्छी खासी पनाह थी ।

दोनों पक्ष जोरशोर से भिड गए। नाना की फौजें चार घंटे तक शत्रुओं की गोलाबारी के सामने टिके रही। गांव के भीतर उन्होंने बड़ी वीरता के साथ मुकाबला किया लेकिन शत्रु पक्ष की लगातार गोलाबारी के कारण उन्हें पीछे हटकर पांडु नदी के पुल पर मोर्चा जमाना पड़ा और अपने पीछे अनेक मृतक व्यक्ति छोड़ने पड़े।

महान सामरिक भूल

पत्थर के इस पुल का युद्ध संबधी विशेष महत्व था। लेकिन हेवलाक को अपने गुप्तचरों से यह जानकारी मिलने पर बहुत ही आश्चर्य हुआ कि इस पुल को नष्ट नही किया गया था। विद्रोहियों की स्थिति श्रेष्ठ थी और इसकी सुरक्षा के लिए खाई तो थी ही गैरिसन कैलिबर की दो तोपें भी लगी थी यद्यपि उनका उद्देश्य यही था कि अंतिम उपाय के रूप में पुल को उड़ा दिया जाएगा। नदी में बाढ़ आई हुई थी। हेवलाक के पास पीपे (पट्टा) नही थे और युद्ध क्षेत्र के भीतर नावें पा लेना भी उसके लिए आसान नहीं था। पुल के विनाश से कानपुर की ओर उसका प्रस्थान धीमा पड़ गया होता। एक क्षण भी खोने लायक नही था। यद्यपि उसकी सेना औंग में हुए सारे दिन के युद्ध में काफी थक गई थी फिर भी उसने उन्हे विश्राम नही करने दिया। उसकी फौजें पांच घंटे तक पुल के निकट पहुंचने के लिए धूप में मार्च करती रहीं।

तात्या और उसके सैनिक इस पुल के युद्ध संबंधी महत्व से अनभिज्ञ नही थे। उन्होंने उसकी सुरक्षा के लिए विशेष ध्यान दिया था और यह जिम्मेदारी बाला राव को सौंपी गई थी। उनका विचार तब तक पुल की रक्षा करने का था जब तक रक्षणीय होता नही तो इसे उड़ा देना था। शायद उन्हें अपने सुरंग बनाने वालों और खनिकों पर जरूरत से ज्यादा विश्वास था।

जब हेवलाक की फौजें मौके पर पहुंची तो प्रवेश द्वार पर जमकर संघर्ष हुआ। तोपों से काफी समय तक गोलाबारी होती रही, किंतु निर्णायक मौके पर दो तोपें बेकार हो गई। जब पुल को उड़ा देने के आदेश दिए गए तब उनका पालन बड़ी अक्षमता से किया गया। केवल एक मुडेर ही उड़ाई गई, शेष मेहराबें वैसी ही बनी रही। हेवलाक ने पुल पार करके विद्रोहियों की तोपों पर कब्जा कर लिया और उन्हें कानपुर की तरफ भागने के लिए मजबूर कर दिया।

इस महत्वपूर्ण पुल को उड़ा पाने में असफलता वस्तुतः ऐसी महान साम-रिक भूल थी जिसके लिए तात्या को ठीक ही दोषी ठहराया गया था। आखिर पुल पर युद्ध करने में अपने सैनिकों की शक्ति का दुरुपयोग करने का क्या तुक था? जिसे यदि औंग से पीछे हटते ही उड़ा दिया गया होता तो अंग्रेज

फौजों को आगे बढ़ने के लिए काफी समय तक रुकना पड़ता।

इस भूल का उसे भारी मूल्य चुकाना पड़ा क्योंकि इससे हेवलाक के लिए कानपुर का, जो भावी संघर्ष का महत्वपूर्ण क्षेत्र था—रास्ता आसानी और जल्दी का हो गया और इसी वजह से वह समय रहते लखनऊ को भी मुक्त करा सका।

कानपुर का युद्ध

पांडु नदी तो पार कर ली गई मगर कानपुर अभी भी दूर था। अभी एक युद्ध और करना शेष था—अंतिम और निर्णायक युद्ध। हेवलाक के पास यह खबर पहुंच चुकी थी कि नाना ने अंग्रेज स्त्रियों और बच्चों को कैद कर लिया था। उसके लिए तेज गति का ही विशेष महत्व था क्योंकि वह कैदियों को यथा संभव शीघ्र सहायता देना चाहता था।

हेवलाक ने लगातार तीन युद्धों में विजय पा ली थी इससे राष्ट्रीय सेना का मनोबल टूटने लगा था। उनके लिए यह अंतिम मौका था। कानपुर के युद्ध मे ही यह निर्णय होना था कि नवस्थापित मराठा साम्राज्य बना रहेगा या नही। रक्षात्मक मोर्चों के चुनाव में भारी कुशलता प्रदर्शित की गई। ग्रांड ट्रंक रोड तथा कानपुर कैंटूनमैंट रोड के चौराहे से एक मील पहले सेनाएं दोनों सड़कों को काटती हुई मेहराब के रूप में तैनात की गई। उनकी मोर्चा बंदी इस तरह की गई थी कि दोनों सड़कों से होकर निकल पाना असंभव था। इस मोर्चे के साथ साथ तोपें भी लगाई गई थी जिसमें अनेक गांव भी समाविष्ट थे। इनके पीछे पैदल सेना रखी गई थी।

काए ने कानपुर के युद्ध में टुकड़ियों के व्यवस्थापन में दिखाई गई उत्कृष्ट सामरिक कुशलता के संबंध में काफी कुछ कहा है और इस बात पर आश्चर्य भी व्यक्त किया है कि नाना के सेनाध्यक्षों में ऐसी कुशलता थी। इसका उत्तर खोज निकालना कठिन नहीं है। जैसा कि सर विलियम हंटर ने लिखा है "नाना ने जो कुछ थोड़ी बहुत सैनिक प्रतिभा का प्रदर्शन किया वह मात्र तात्या टोपे की वजह से थी।"[1]

कानपुर का पतन

एक बार फिर अंग्रेज सेनाध्यक्षों ने राष्ट्रीय सेनाध्यक्षों को मुंह की खिला दी। हेवलाक ने बाएं की ओर मुड़ने की चालाकी दिखाई और आम के बगीचों की

1 धर्मपाल—तात्या टोपे, पृष्ठ 44.

घनी छाया के पीछे से शत्रु के बाएं बाजू को घेर लिया। विद्रोही पहले तो इस सैन्य संचालन के उद्देश्य को समझ ही न सके। और जब तक समझे इसी बीच घुड़सवार सेना ने उन पर हमला कर दिया तथा गोली वर्षा शुरू कर दी। संघर्ष भयानक था और भारी नर संहार हुआ। छुटपुट युद्ध भी काफी हुआ। किंतु जैसे ही हेवलाक का दबाव आगे की तरफ पड़ा उसने अपने आप को दुश्मन की फौजों के बीच पाया। द्वितीया के चंद्रमा की तरह शत्रु के पक्ष के सैनिक बिखरे हुए थे, विद्रोही पैदल सेना व्यूह बद्ध थी, उनके पार्श्व में असंख्य घुड़सवार और तोपें थीं। दृश्य शानदार मगर भयावह था। निशान फहरा रहे थे, बिगुल बज रहे थे, नगाड़े की गड़गड़ाहट के मध्य उनके सेनाध्यक्ष ने डटी हुई बटालियनों के बीच प्रवेश किया। सेनाओं ने उन्हें रास्ता दे दिया। नाना स्वयं कानपुर से विजय की इच्छा लेकर आ गए थे।[1]

गर्मी की तपती दोपहरी में सारे दिन मार्च करने और युद्ध करने की वजह से अंग्रेज सैनिक थक गए थे। वे तुरंत मुकाबला करने के अनिच्छुक थे। किंतु अचानक तात्या की 21-पाउंडर से आग बरसने लगी, उसके गोले तेजी से और जल्दी-जल्दी आने लगे। हेवलाक के घोड़े को गोली लग गई, मगर वह तुरंत एक टट्टू पर सवार हो गया। .... वह अकेला इंसान था जो अपना सिर उठा सका, हमारे ऊपर इतनी ज्यादा और इतने नजदीक गोलियां बरस रही थी .. .. यह अप्रतिरोध्य था, शत्रु इतनी नियत निष्ठता और मनोबल से हमला कर रहे थे जो मैंने शायद ही कभी देखी हो। लेकिन उनका दबाव बढ़ता गया, मैदान हताहतों से पट गया था। फिर भी वे 24-पाउंडर से हमला करते हुए तब तक आगे बढ़ते रहे जब तक उन्होंने अपने शौर्य की दुर्जेय ट्राफी पर अधिकार नहीं कर लिया।

यह कानपुर के भयंकर युद्ध का अंतिम चरण था। क्योंकि तेजी से हो रही गोली बारी के पश्चात् नाना की पैदल सेना[2] बिखर गई। भारी गोला बारी ने उनको पूरी तरह तितर-बितर कर दिया।

"ऐसा था कानपुर का युद्ध। क्रांतिकारियों ने अच्छी तरह युद्ध किया। उनमें से कुछ तो तब भी न रुके जब तलवारों से तलवारें टकराने लगी। उन्होंने अपनी तोपों की दृढ़तापूर्वक रक्षा की और गोलाबारी भी अचूक निशाने बाजी के साथ की गई।"[3]

कानपुर के युद्ध में वे पराजित हो गए किंतु विजय का फल हेवलाक को न

---

1 जी० डब्ल्यू फारेस्ट : पृष्ठ 389-90

2 वही

3 रेड पैम्फलेट

मिल सका। चिलचिलाती धूप में लगातार मार्च करने और युद्ध के बाद युद्ध करने के कारण बुरी तरह थकी हुई उसकी सेना विद्रोहियों का पीछा न कर सकी और कानपुर छावनी से दो मील दूर बिना भोजन या तंबुओं के उस रात बिल बिलाती रही। जब युद्ध समाप्त हुआ तो अंधेरा हो ही चुका था और रात का फायदा उठाकर विद्रोही सेना को भाग निकलने में सफलता मिल गई। इस प्रकार तात्या सेना का भारी हिस्सा पुनः प्राप्त करने में सफल हो गए जो महीने भर के भीतर उनके पास एकत्र हो गई।

तात्या सेनाध्यक्ष नियुक्त हुए

नाना और तात्या बिठूर पहुंचे। कानपुर की पराजय से नाना हतोत्साहित हो गए थे। उनका भूतपूर्व साम्राज्य समाप्त हो गया था। उन्होंने अपने सैनिकों का शौर्य देख लिया था, पराजय का कारण और कुछ नहीं, बस सैनिक नेतृत्व की असफलता थी। इस संबंध में एक कहानी प्रसिद्ध है कि अपने सेनाध्यक्षों से निराश होकर किस तरह नाना ने उसी रात तात्या को अपना सेनाध्यक्ष बनाया और उन्हें विद्रोह की पताका फहराते रहने का आदेश दिया। अब से आगे, नेतृत्व तात्या के हाथों में आ गया था।

हेवलाक ने, इलाहाबाद छोड़ने के ठीक दस दिन बाद, 17 जुलाई को अपनी विजयी सेना के साथ कानपुर की ओर कूच किया। किंतु अपने देश की स्त्रियों की रक्षा करने का उसका संकल्प पूरा न हो सका क्योंकि बीबीघर के कैदियों को पहले ही मारा जा चुका था।

नाना, उनके भाइयों और तात्या ने अपने परिवारों के सदस्यो सहित, रात के अंधेरे में, 18 जुलाई को बिठूर छोड़ दिया। गंगा नदी को पार कर उन्होंने फतेहगढ़ चौरासी में चौधरी भोपाल सिह के यहां शरण ली। 18 जुलाई को मेजर स्टीवेंसन ने बिठूर की ओर प्रस्थान किया तथा पेशवा के महल पर कब्जा कर लिया। दूसरे दिन नील कानपुर आ पहुंचा और हेवलाक ने लखनऊ को मुक्त कराने की अपनी तैयारियां शुरू कर दी। 25 जुलाई तक, उसने गंगा नदी पार कर ली।

नील की वज्र मुष्टि

हेवलाक के प्रस्थान करने के पश्चात्, नील कानपुर का सर्वेसर्वा हो गया। कानून और व्यवस्था कायम करना तथा अपराधियों को दंड देना उसकी जिम्मेदारी थी। नील आधे अधूरे प्रयासों का कायल नहीं था और उसने जल्दी ही अपनी वज्र मुष्टि से सारे नगर को गाय की तरह वश में कर लिया। उसका

विश्वास था प्रारंभ में क्रूरता ही अंत में दया है। इसलिए कत्लेआम का प्रतिशोध लेने के लिए उसने दूसरा भयकर असंस्कृत और प्रतिहिंसक कत्लेआम शुरू कर दिया। उसकी इच्छा थी कि हिंदुस्तान के निवासियों को यह दिखा दिया जाए कि ऐसे कार्यों के लिए कठोरतम दण्ड दिया जाएगा जिससे उनकी प्रतिरोध की भावनाएं कुचल दी जाएँ और वे उसे सदा के लिए याद रखें। इसलिए उसने ऐसा आदेश जारी किया कि प्रत्येक कुचक्री को फांसी देने के पहले बूचड़खाने ले जाया जाए और उसे खून के धब्बों से भरी जमीन के थोड़े हिस्से को जीभ से चाट कर साफ करने के लिए मजबूर कर दिया जाए। उसने स्वयं हमें कुछ अभागों के उदाहरण दिए है जिन्हें कोड़े मार मार कर उस रक्त को चाटने के लिए मजबूर कर दिया गया या जिसे बहाने में शायद उनका हाथ भी नहीं था। उसने उन सभी लोगों से अपना प्रतिशोध लिया जिन पर उसे विद्रोह में जरा-सा भी हिस्सा लेने का संदेह था।

इतना करने पर भी, नील, अपने शिकार के दिल में भय पैदा कर पाने में असफल रहा। वे मृत्यु का असाधारण धैर्य के साथ सामना करते थे "मुसलमान दर्भ और एक तरह की क्रोध युक्त अवज्ञा के साथ जब कि हिंदू मृत्यु को वैसा ही समझते थे मानो वे किसी यात्रा पर जा रहे हों।"[1]

कानपुर का युद्ध निर्णायक था। कानपुर की पराजय से राष्ट्रीय संघर्ष का मार्ग बदल गया। विद्रोहियों का, अवध विद्रोह के दूसरे महत्वपूर्ण केंद्र बिंदु लखनऊ से संपर्क टूट गया। इससे अंतःशक्ति का केंद्र नष्ट हो गया और अवध और उत्तर पश्चिमी प्रांत में युद्ध के लिए अंग्रेजी सेनाओं को एक सामरिक क्षेत्र मिल गया और इस तरह इस क्षेत्र में काफी सीमा तक विद्रोह की गतिविधियां कमजोर पड़ गई।

---

1 माड एण्ड शेयर, खड 1, पृष्ठ 251-252

7. तात्या–सेनाध्यक्ष के रूप में

कानपुर में विद्रोही सेना की पराजय के पश्चात् नाना के सैनिक क्रियाकलाप की पहल तात्या के सशक्त हाथो में आ गई। पश्चात्वर्ती घटनाओं से यह पता लग जाता है कि सेनाध्यक्ष के रूप में तात्या की नियुक्ति संबंधी नाना का विनिश्चय बहुत ही उचित था। जब दिल्ली में होने वाला स्वतंत्रता संग्राम 11 मई से 20 सितंबर तक कुल चार मास ही चल सका, लखनऊ में दस महीनों तक अर्थात् 21 मार्च तक चलता रहा, बिहार में सिंह बंधु 1858 के अक्तूबर मास तक संघर्ष करते रहे, वहीं पर तात्या सबसे लंबी अवधि अर्थात् 17 जुलाई, 1857 से 8 अप्रैल, 1858 तक डटे रहे।

पराजय के कारण नाना हतोत्साहित हो गए थे मगर तात्या नही हुए। वह पुन: सैनिक संगठन के कार्य मे लग गए। उनका मुख्य उद्देश्य कानपुर पर पुन: कब्जा करना था। कानपुर के बागी सैनिकों का काफी बड़ा हिस्सा लखनऊ की घेराबंदी में मदद करने के लिए निकल भागा था। यह बात साफ थी कि हेवलाक घिरी हुई रेजीडेंसी को छुड़ाने के लिए पूरा जोर लगाएगा। अत: तात्या की योजना बिठूर में भारी फौज इकट्ठा करने तथा कानपुर पर उस समय हमला करने की थी जब कि हेवलाक लखनऊ में व्यस्त हो। महीने भर के भीतर उन्होंने शिवराजपुर में ठहरी हुई इक्तालिसवीं पैदल सेना को अपनी तरफ मिला लिया तथा 4000 सिपाही और दो तोपें इकट्ठा कर लीं। नील द्वारा हेवलाक को भेजी गई भयप्रद रपट में कहा गया, कि उसकी मदद के बिना इससे और इलाहाबाद से परे सारा देश हमारे हाथ से निकल जाएगा, हमारी फौजें तथा गोला बारूद सभी दुश्मनों के हाथ में होंगी तथा हम बड़ी मुसीबत में पड़ जाएंगे। यह खबर पाकर हेवलाक वापस आया और 16 अगस्त को बिठूर का युद्ध लड़ा गया।

बिठूर का युद्ध

यहां एक बार फिर तात्या ने रक्षात्मक मोर्चों का चुनाव करने में अपने कौशल का परिचय दिया। वह पनाह युक्त चौक से घिसे हुए चौड़े फसीलों के

पीछे अपना मोर्चा जमाए हुए थे। बाजुओं पर दोनों ओर स्थित गांव और नगर बिठूर मुख्य मोर्चे द्वारा समर्थित थे। सामने गन्ने के घने खेत थे जिनसे पैदल सेना को अच्छी खासी आड़ मिल गई थी। किंतु इसी आड़ का प्रयोग हेवलाक के सिपाहियों ने अपनी गतिविधियों के लिए और तात्या को धोखा देने के लिए किया। भयानक संघर्ष के बाद तोपों पर कब्जा कर लिया गया और तात्या की फौजें नगर की तरफ निकल भागी। पीछा किए जाने पर उन्होने जमकर विरोध किया, किंतु युद्ध में पराजय ही हाथ लगी। एक बार फिर सिपाहियों के शौर्य का सिक्का अपने से श्रेष्ठ सेना पर जम गया और इस युद्ध में उन्हें अच्छी खासी ख्याति मिली तथा सेनाध्यक्ष के रूप में तात्या की प्रतिष्ठा स्थापित हो गई। अपने एक पत्र में हेवलाक ने लिखा "यह कहना विद्रोहियों के साथ न्याय करना होगा कि उन्होने हठधर्मी के साथ युद्ध किया। अन्यथा वे मेरी सशक्त तोपखाने की गोलाबारी के सामने, अधिक अच्छी स्थिति में होते हुए भी, घंटे भर भी न टिक पाते।" यह बात सभी युद्धों के संबंध में सच थी। क्रांतिकारियों में साहस की कमी नहीं थी, उनके पास तो श्रेष्ठ हथियारों का अभाव था। सेन ने ठीक ही लिखा है कि "यदि एन्फील्ड की वजह से विद्रोह हुआ था तो एन्फील्ड ने ही विद्रोहियों को दबाने में भी मदद की।"[1]

काल्पी—पेशवा का नया मुख्यालय

कानपुर पर पुनः कब्जा करने में सफलता न मिलने पर तात्या ने एक किले की जरूरत महसूस की जिसका उपयोग उसके अभियानों के लिए अड्डे के रूप में किया जा सके। उनकी नजर काल्पी के मजबूत दुर्ग पर पड़ी। यमुना नदी के दाहिने तट पर एक प्रपाती चट्टान के ऊपर स्थित और कानपुर से केवल 47 मील दूर काल्पी सामरिक महत्व की दृष्टि से एक श्रेष्ठ स्थान साबित होता। कानपुर के बाद, काल्पी के अलावा कोई भी अड्डा अधिक सुरक्षित न होता। उनकी दृष्टि से कानपुर पर पुनः कब्जा करने का मुख्य उद्देश्य ओझल नहीं हुआ था। काल्पी कानपुर से काफी नजदीक था और दोनों नगरों के बीच बहती यमुना नदी अपने आप में एक प्राकृतिक खाई थी। यह नगर फतेहपुर से नाना के निर्वासन स्थान और दो मित्र राज्यों झांसी एवं बड़ौदा से तथा विशेष रूप से ग्वालियर से जहां की विशाल सेना पर विजय प्राप्त करने का विचार तात्या ने कर लिया था, समान दूरी पर सबके मध्य स्थित था। उन्होंने काल्पी पर तत्काल अधिकार कर लिया। जब नाना को इसकी जानकारी मिली तो वह पेशवा का मुख्यालय वहां स्थानांतरित करने के लिए सहमत हो गए और अपने प्रतिनिधि के रूप में राव साहब को भेज दिया।

---

1 डा० सुरेंद्र नाथ सेन : अठारह सौ सत्तावन, पृष्ठ 207

ग्वालियर का सैन्य-बल

ग्वालियर के महाराजा के पास 10,000 लोगों का विशाल परिवार था जिनमें से अधिकांश मराठा था। ग्वालियर सैन्यदल में देशी टुकड़ियां थी जिन्हें वेतन तो महाराजा देते थे मगर उन्हें ब्रिटिश कमांडरों द्वारा ड्रिल कराई जाती थी और आदेश दिये जाते थे। उसमें 8,000 से अधिक सिपाही देशी ही थे जिन्हें अवध से भर्ती किया गया था। सेना का मुख्य भाग ग्वालियर में ही था तथा सीमा चौकियां सिपरी और आगरा में भी थीं। यही वह संभावना थी जिस पर राष्ट्रीय विद्रोहियों की आशाएं टिकी हुई थी और उन्हें निराश भी नहीं होना पड़ा। वास्तव में झांसी के विद्रोह के संमर्ग से प्रभावित होकर वे जून में ही सशस्त्र संघर्ष के लिए जुट खड़े हुए थे किंतु वे काफी समय तक निष्क्रिय बने रहे। जब इंदौर और महोबा के उनके साथियो ने आगरा की ओर प्रस्थान किया उस समय वे उनके साथ शामिल नहीं हुए। जब हेवलाक ने कानपुर पर अधिकार किया उस समय भी वह कानपुर के बचाव के लिए आगे नहीं बढ़े। यदि वे नाना के साथ सम्मिलित हो गए होते तो स्वतंत्रता संग्राम को अभूतपूर्व शक्ति और प्रतिष्ठा मिली होती। वस्तुत: इससे संपूर्ण विद्रोह का पासा ही पलट गया होता। ग्वालियर के महाराज और उनके प्रधानमंत्री, राजवाड़े, जो अंग्रेजों के विश्वासपात्र थे, अब तक अपने सैनिकों को विभिन्न युक्तियों से और विशेष रूप से धन का प्रलोभन देकर शांत किए थे। यह तो तात्या थे चतुर और मधुरभाषी व्यक्ति—जो अपने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर लेते थे, जिन्हें उन सैनिकों को फोड लेने में सफलता मिली।

कैम्पबेल का असमंजस

इस बीच दिल्ली का पतन हो चुका था। विद्रोहियों द्वारा आगरा पर किए गए आकस्मिक हमले में भी उन्हें असफलता मिली थी। मुख्य रूप से स्वातंत्र्य संघर्ष लखनऊ और कानपुर के आसपास ही संकेन्द्रित हो गया था जो अंग्रेजी फौजों की भी संकेंद्रता के प्रमुख आधार बने हुए थे। सर कॉलिन कैम्पबेल को क्रीमिया युद्ध से वापस बुला लिया गया और उन्हें भारतीय फौजों की कमान सौंप दी गई। सर कॉलिन जीवन के साठ बसंत देख चुके थे और श्रेष्ठ सेनानायक के रूप में उन्हें लगभग 50 वर्ष का सामरिक अनुभव था। लार्ड डलहौजी के साथ तालमेल न बैठ पाने के कारण उन्हें सेवा निवृत होना पड़ा था और जब क्रीमिया युद्ध शुरू हुआ तो उन्हें वापस बुलाया गया। वह अगस्त में भारत पहुंचे और कानपुर की कुमुक के लिए तुरंत तैयारियां शुरू कर दी। वह तीन नवंबर को कानपुर पहुंचे। कैम्पबेल के मन में यह असमंजस

था कि वह लखनऊ को छुड़ाने के लिए उस ओर बढ़े या फिर ग्वालियर के सैन्य बल का सामना करे जो तात्या की कमान में काल्पी में आ पहुंचा था। यह भी सूचना मिली थी कि कानपुर पर हमले में उनके साथ शामिल होने के लिए नाना भी पहुंच रहे थे। ऐसी स्थिति में कैम्पबेल कानपुर की सुरक्षा के लिए पर्याप्त सेना भी नहीं छोड सकते थे जो उनकी अनुपस्थिति में अगर कानपुर पर हमला हो जाए तो बचाव कर सके। साथ ही यह भी खतरा था कि अगर लखनऊ की फौरन मदद न की गई तो वहां की दुर्ग रक्षक सेना अधिक समय तक मुकाबले में न टिक सकेगी। अंततः उन्होंने मेजर विंढम को एक छोटी टुकड़ी के साथ कानपुर मे छोड़ा और लखनऊ की ओर प्रस्थान किया। मेजर विंढम को यह निर्देश दिया गया कि वह तब तक हमला न करे जब तक कि बमबारी से पूरी तरह नष्ट हो जाने का भय न हो।[1]

कैम्पबेल के इस निर्णय पर सभी ओर से विरोधी विचार व्यक्त किए गए। मेल्सन ने इस आधार पर इस निर्णय का समर्थन किया कि लखनऊ में, जहां अंग्रेजों के सैनिक, उनकी स्त्रियां और उनकी प्रतिष्ठा दांव पर थी,[2] सहायता ज्यादा जरूरी थी, जबकि सरजॉन फार्टेक ने यह कहा कि कैम्पबेल ने विंढम को वैसी ही दयनीय स्थिति में छोड़ा जिस स्थिति में प्रथम सिख युद्ध के आरंभ में लार्ड गफ़ थे।[3]

कानपुर पर पुनः कब्जा करने का प्रयास

दुर्जेय ग्वालियर सैन्य दल और अन्य सैनिकों का सहयोग प्राप्त कर तात्या कानपुर की ओर बढ़े। उन्होंने बड़ी तेजी से भगिनीपुर, शिओली, अकबरपुर, शिवराजपुर आदि अनेक नगरों पर 10 नवंबर और 20 नवंबर के दौरान विजय प्राप्त कर ली। कानपुर पर कब्जा करने के लिए जालौन पहुंच गए और दूसरी ओर बांदा के नवाब तथा कुंवरसिंह ब्रिटिश आवागमन को रोक देने के प्रयास के लिए कानपुर पहुंच गए थे। तात्या की योजना थी कि सर कॉलिन की वापसी के पहले कानपुर पर कब्जा कर लिया जाए और उसके सैन्य संचालन के दुर्ग से उसे बाहर कर दिया जाए। गति का ही सर्वाधिक महत्त्व था। यदि वह 13 नवंबर तक, जबकि विंढम लखनऊ में व्यस्त था, कानपुर पहुंच गए होते तो वह विंढम को आसानी से परास्त कर देते किंतु वह तो उस समय अपने गंतव्य से मीलों दूर थे।

सर कॉलिन के समान विंढम ने भी क्रीमिया युद्ध में नाम कमाया था।

---

1 मेल्सन : भारतीय विद्रोह का इतिहास, खंड 4 पृष्ठ 105

2 वहीं

3 डा॰ सुरेंद्र नाथ सेन : अठारह सौ सत्तावन, पृष्ठ 226

अभूतपूर्व साहस से विंढम ने सोचा कि यद्यपि इस काम में कुछ खतरा तो था फिर भी अच्छी युद्ध कला यह होगी कि मोर्चाबंदी की रक्षा के लिए कुछ सैनिकों को छोड़ दिया जाए और दुश्मन को इकट्ठा होने का मौका मिलने से पहले ही उस पर हमला कर दिया जाए। 17 नवंबर को उसने कानपुर से कूच कर दिया। तात्या 25 तारीख को पाण्डु नदी तक पहुंचे। 26 नवंबर को विंढम ने तात्या की फौज के एक डिवीजन को हरा दिया जो अपने पीछे दो तोपें छोड़ कर युद्ध से पीछे हट गया। और उसने यह सोचा कि उसने दुश्मन को भगा दिया तो यह उसकी भूल थी क्योंकि वह मुख्य सेना तक अभी नहीं पहुंचा।

मेल्सन ने लिखा है विद्रोहियों का सेनानायक मूर्ख नहीं था। विंढम द्वारा किए गए प्रहार से वह भयभीत नहीं हुआ अपितु उसे अंग्रेज सेनानायक की कमजोरियों का पता चल गया। तात्या टोपे ने तब विंढम की स्थिति की जरूरतों का खुली किताब के समान अध्ययन कर लिया और एक अच्छे सेनानायक के रूप में उन कमजोरियों से फायदा उठाने का संकल्प किया।[1] दूसरे ही दिन तात्या ने विंढम को मात दे दी उसकी घुडसवार सेना ने विंढम की फौजों का पीछा किया वे सामना न कर पाए और घेराबंद में शरण लेने के लिए मजबूर हो गए। रसद-भंडार और सामान आदि सहित सारा नगर तात्या के हाथों में आ गया।

इस दृश्य का एक अंग्रेज अधिकारी ने बड़ा अच्छा वर्णन किया है, "अंग्रेजी फौजें अपनी वैजयंतियों, अपने उद्देश्यों और अर्जित ख्याति के बावजूद पीछे हट गए और अपने कैम्प, अपना माल असबाब और अपने मोर्चे भेदियों और तिरस्कृत भारतवासियों के लिए छोड़ गए। हारे हुए फिरंगी, जैसा अब विद्रोहियो को उन्हे कहने का अधिकार मिल गया था टूटे-फूटे तंबुओं, बिखरे हुए माल, असबाब, वर्दियों, बलबलाते ऊंटों, हाथियों, घोड़ों और नौकरों के बीच से भागकर अपनी खाइयों में छिप गए। यह बड़ी अभद्र और दुखत स्थिति थी।"[2] कानपुर पर पुनः कब्जा से तात्या को एक और अप्रत्याशित सफलता मिली जिनके विषय में उनके विरोधियों का कहना था कि, "वह महान नैसर्गिक प्रतिभा वाला व्यक्ति था।"[3]

किन्तु यह विजय बहुत ही अल्पकालीन थी। तुरंत सहायता की सूचना मिलते ही, कैम्पबेल तेजी के साथ कानपुर की ओर बढ़ा। लखनऊ रोड पर बनी खाई और पीपों के पुल पर अभी भी अंग्रेजों का कब्जा था। इस पुल को कैम्पबेल द्वारा पार किए जाने से पूर्व नष्ट किया जाना आवश्यक था, यह फिर सामयिक दौड़ थी।

---

1 मेल्सन : भारतीय विद्रोह का इतिहास खंड 4, पृष्ठ 167

2 चार्ल्स बेल : भारतीय विद्रोह, खंड 2, पृष्ठ 190

3 मेल्सन : भारतीय विद्रोह का इतिहास, खंड 4, पृष्ठ 186

29 नवंबर को तात्या अपनी तोपों के साथ पुल को उड़ाने के लिए आगे बढ़े मगर तब तक काफी देर हो चुकी थी। कैम्पबेल को भी पुल के महत्व की भलीभांति जानकारी थी, उसने अपनी फौजें और रसद पीछे छोडी और थोड़े से सैनिकों के साथ कानपुर की ओर बढ़ा। उसने गोला बारूद से पूर्णतः युक्त दुश्मनों के सामने चौड़े पाट वाली नदी को पार कर सर्वाधिक कठिन सैनिक अभियान में कुशलतापूर्वक सफलता प्राप्त की।

6 दिसंबर को कैम्पबेल ने तात्या पर आक्रमण किया। उसकी युद्ध योजना यह थी कि वह पहले तो तात्या की सेनाओं को ग्वालियर के सैन्य दल से अलग कर दें और फिर एक-एक को कुचल दे। तात्या की फौज की संख्या यद्यपि संख्या में बहुत अधिक लगभग 10,000 थी किंतु उसमें विभिन्न जातीय और रंगरूट ही थे। कैम्पबेल ने उसके अत्यधिक असुरक्षित स्थल पर ठीक बाजू में हमला किया। किंतु उसके सफल होने के पहले ही तात्या ने शत्रु को बिठूर रोड की तरफ दबा लिया और अपना माल समेट कर रात्रि के अंधेरे में अपनी सेना और तोपों के साथ निकल गए। जब 8 दिसम्बर को होप ग्रांट को उनका पीछा करने के लिए कहा गया तब तक तात्या बिठूर को छोड़कर सरायघाट की ओर जा चुके थे। 9 दिसम्बर को भाग दौड़ में दोनों के बीच छिटपुट युद्ध होते रहे और तात्या एक बार फिर मैदान छोड़ने के लिए मजबूर हो गए। कानपुर के लिए लड़ा गया यह अंतिम युद्ध था, किंतु यद्यपि तात्या के सैनिक बिखर गए थे और उनकी तोपें छिन गईं थीं फिर भी तात्या काफी लम्बे समय तक अंग्रेजों के लिए खतरा बने रहे।

तात्या को हरा कर काल्पी की ओर भगाने के पश्चात्, होप ग्रांट ने बिठूर की ओर ध्यान दिया। यह रिपोर्ट मिली कि पिछली रात नाना अपने महल में ही सोए थे। मात्र नाना का महल ही अंग्रेजों के क्रोध का लक्ष्य नहीं था अपितु पवित्र मंदिर भी उनका लक्ष्य था। महल ध्वस्त कर दिया गया, उसकी बुर्जियां गिरा दी गईं और एक भी पत्थर साबुत नहीं छोड़ा गया। अवध की ओर भागते समय जिस विशाल खजाने को नाना अपने साथ नहीं ले जा पाए थे और जिसे महल के भीतर एक बड़े कुएं में फेंक दिया गया था उसे भी होप ग्रांट ने खोज निकाला। इस प्रकार बिठूर से पेशवाओं के अस्तित्व के अंतिम चिह्न भी मिटा दिए गए।

किंतु पेशवा परिवार का अंतिम वंशज अब भी हाथ से बाहर था। उसका भी समूलोच्छेदन करना था। कानपुर से विद्रोहियों का भलीभांति सफाया करने के बाद, अब केवल एक ही स्थान, जो नाना का अंतिम गढ़ था, ध्वस्त करने के लिए शेष था। यह स्थान कानपुर से 25 मील दूर फतेहपुर चौरासी नामक

स्थान था जहां पर नाना के छिपे होने की सूचना मिली थी। होप ग्रांट वहा पर 17 दिसंबर को पहुंचे और किले को धराशायी कर दिया किंतु तब तक नाना पहले ही निकल भागे थे।

पेशवा की सेना

कानपुर पर पुनः कब्जा करने के अपने प्रयास के असफल हो जाने पर और बिठूर का पतन हो जाने पर, तात्या ने अपने क्रिया कलापों का अड्डा मध्य भारत में—यमुना और नर्मदा के बीच स्थित क्षेत्र में बनाया। देश का यह भाग अभी तक अनेक विद्रोही शासकों के कब्जे में था। तात्या का सबसे बड़ा सहयोगी, मित्र झांसी, विद्रोहियों के हाथों में था। पेशवा के रक्त संबंधी, बांदा के नवाब भी कुछ महीनों से तात्या के साथ आ गए थे। अक्तूबर महीने में बिहार के वृद्ध शेर, कुंवर सिंह भी आकर तात्या के साथ मिल गए जिन्हें अपनी राजधानी जगदीशपुर से खदेड बाहर किया गया था। धार का शासक अल्प वय था। उसका वास्तविक शासन रामचंद्र बापू जी के हाथों में था। वह भी स्वतंत्रता संग्राम में सम्मिलित हो गए थे। मुगल शहजादे, फीरोज शाह ने अफगानों और मकानियों की फौज लेकर, पहले ही मंदसौर की घेराबंदी कर ली थी और नीमच के लिए खतरा बने हुए थे। बानपुर के राजा, मर्दानसिंह ने सगौर के अधिकांश भाग पर अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। राहतगढ़ में, अम्भ्रापसी के नवाब ने किले पर अधिकार कर लिया था। गढ़ा कोटा पर भी विद्रोहियों का कब्जा था और बुंदेला प्रधान भी पास पड़ौस के क्षेत्र में लूटमार मचाए हुए थे। इससे कुछ हट कर दक्षिण की ओर जबलपुर में भी सैनिकों ने विद्रोह कर दिया था।

दिल्ली के पतन लखनऊ की मुक्ति और कानपुर से विद्रोहियों का पूरी तरह सफाया हो जाने के साथ ही राष्ट्रवादी सेनाओं के भाग्य का पासा पलट गया था। इतना होने पर भी, विद्रोही नेता स्वतंत्रता संग्राम को चरम परिणति तक ले जाने के लिए कृत-संकल्प थे। काल्पी में सुदृढ़ घेराबंदी करने के पश्चात् तात्या ने अपनी सेना का संगठन करना प्रारम्भ कर दिया। राय साहब के अधीन पहले ही से एक छोटी टुकड़ी और बारूद खाना विद्यमान था। इसके अतिरिक्त, कानपुर छोड़ते समय तात्या ने अपनी सेना का अधिकतर हिस्सा तितर-बितर कर दिया था। इस बीच, कानपुर और शाहगढ़ के राजा, देशपत के दीवान दौलत सिंह, कछवाहा खारवाल और अन्य अनेक लोग तात्या के साथ मिल गए थे। अब तात्या ने पेशवा की सेना का पुनर्गठन किया, उसमें 20,000 सैनिक और 30 तोपें थी। इस प्रकार पुनः शस्त्र सज्जित होकर वह सर ह्यूरोज की सेना की प्रतीक्षा करने लगे जो मध्यभारत में आगे बढ़ रही थी।

मध्य भारतीय सैनिक संघर्ष

अंग्रेज 1857 के अंत तक मध्य भारत के अभियान के लिए एक ठोस योजना बना पाए। इस योजना के अनुसार चंदेरी और झांसी के विरुद्ध संघर्ष के लिए सैंट्रल इण्डिया फील्ड फोर्स को नर्वदा के तट पर सर ह्यूरोज के कमान में एकत्र होना था। इसके बाएं बाजू पर, दूसरे दस्ते राजपूताना फील्ड फोर्स को मेजर जनरल राबर्टस के अधीन बम्बई से नसीराबाद होकर अवध और कोटा की तरफ बढ़ना था जब कि तीसरे दस्ते अर्थात् सागर फील्ड फोर्स को, जिसमें मद्रास की फौजी टुकड़ियां सम्मिलित थी, ह्विटलाक की कमान में जबलपुर से चलकर बुंदेलखण्ड और बांदा तक पहुंचना था। तीनों दस्ते एक ही शामिलाती योजना के अंग थे और उन्हें एक दूसरे की मदद भी करनी थी।

सर ह्यू को युद्ध कला और कूटनीति का काफी अनुभव था। पूना डिवीजन की कमान संभालने के लिए सितम्बर, 1858 में बम्बई आने के पूर्व, यह क्रीमिया युद्ध के दौरान रानी के कमिश्नर के रूप मे फ्रेंच आर्मी के मुख्यालय में काम कर रहे थे। महोबा से चलकर सर ह्यू ने राहतगढ पर हमला करके अपने अभियान का शुभारंभ किया। उन्होंने बानापुर के राना की, जो राहतगढ की मदद के लिए आए थे, सेनाओं को हरा दिया। इसके बाद वह बिना किसी विरोध के सागर की ओर बढ़े। गढ़ा कोटा और कुछ अन्य किलों पर कब्जा करने के बाद, सर ह्यू ने झांसी की तरफ ध्यान दिया। झांसी कुछ मील दूर ही रह गया था कि उन्हें पता लगा कि तात्या अचानक चरकन आ गए थे, चरकन इसी नाम के एक छोटे से बुंदेल खण्ड के राज्य की राजधानी थी। ग्यारह दिन के संघर्ष के पश्चात् तात्या ने नगर पर कब्जा कर लिया और वहां के राजा से 24 बंदूकें तथा तीन लाख रुपये वसूल किए। पराजित राजा ने, जो अंग्रेजों का स्वामिभक्त था, अपने अंग्रेज आकाओं को सहायता करने के लिए संदेश भेजा।

तात्या की ओर से यह बहुत ही श्रेष्ठ युद्ध कला का प्रदर्शन था क्योंकि इस वजह से सर ह्यू द्विविधा में फंस गए। वह पहले चरकारी के राजा की मदद के लिए जाए जिसका तुरंत पतन संभावित था अथवा योजनानुसार झांसी की तरफ बढ़ें। सर ह्यू को यह सलाह दी गई कि वह पहले विश्वासी मित्र की सहायता के लिए पहुंचे क्योंकि ऐसा न करने पर विद्रोहियों का दबाव बढ़ जाएगा और देशी मित्र राज्यों के मध्य अंग्रेजों की मित्रता और प्रतिष्ठा धूमिल पड़ जाएगी। यदि वह झांसी की ओर बढ़ते हैं तो तात्या उसकी (झांसी की) मदद के लिए आगे आ जाएगा और अंग्रेजों के लिए झांसी को परास्त करना टेढ़ी खीर बन जाएगी। मगर सर ह्यू रोज ने इस सलाह पर कान नहीं दिए। उन्होंने यह तर्क दिया कि चरकारी का पतन, अगर वह उस ओर बढ़े तो भी उनके वहां

पहुंचने के पहले ही हो जाएगा। और यदि वह झांसी पर हमला करते हैं तो तात्या झांसी की सहायता करने के लिए बाध्य होगा। और चरकारी के किले पर उसका दबाव अपने आप कम हो जाएगा। अत: वह अपनी मूल योजना पर ही कायम रहे और झांसी की तरफ बढ़े।

झांसी की घेराबंदी

झांसी की घेराबंदी 22 मार्च को शुरू हुई। 25 मार्च को तोपखानों में पलीते पड़ गए और फसीलों पर गोलाबारी होने लगी। किले के भीतर जाने और बाहर निकलने के सभी द्वार और खिड़कियां बंद कर दी गईं। किला मजबूत था, भीतर बुंदेलों और अफगानों की रक्षक सेना 1500 सिपाही और 25 तोपें मौजूद थीं जिनका संचालन कुशल तोपचियों के हाथों में था। सभी लोग रानी के प्रति समर्पित थे और रानी के प्रेरणादायक नेतृत्व में वे शत्रुओं की भीषण गोलाबारी और बंदूक की गोलियों की बाढ़ में बड़ी बहादुरी से लड़े। उनकी तोपें रात में ही शांत होती थीं दिन में नहीं। स्त्रियां भी तोपों पर काम कर रहीं और गोला बारूद की पूर्ति कर रही थीं।"[1] रोज ने स्वयं उनकी प्रशंसा की है उसने एक पत्र में लिखा "जिस तरीके से विद्रोही अपनी तोपें बचा रहे थे, अपनी सुरक्षा के मोर्चों की मरम्मत कर रहे थे, बंद कर दी गई तोपों और बंदूकों से बार-बार गोलाबारी कर रहे थे, वह वास्तव में प्रशंसनीय था। कुछ तोपों से तो वह गोले पर गोला दाग रहे थे।"[2]

रानी के सैनिकों द्वारा वीरतापूर्वक सामना किए जाने के बावजूद शत्रुओं द्वारा की जाने वाली भीषण गोलाबारी ने किले की बुर्जियां ढहा दी और 29 तारीख तक उनकी सभी अच्छी तोपें शांत हो गईं। दूसरे दिन शहर पनाह की दीवार भी एक तरफ टूट गई। उस समय भी वे तात्या से मिलने वाली सहायता का इंतजार कर रहे थे। रानी ने कई घंटे इसी उम्मीद में बिता दिए तब कहीं जाकर धूल के बादल दिखाई पड़े जिससे पता लगा कि तात्या की फौजें पहुंच ही रही हैं।

बेतवा का युद्ध

नगर के बाहरी क्षेत्र में लगभग 20,000 सैनिकों की विशाल फौज के साथ तात्या के आ पहुंचने पर, सर ह्यूरोज की स्थिति शत्रुओं के दोनों तरफ मोर्चे होने के कारण सैण्डविच जैसी हो गई। यह स्थिति अप्रत्याशित नहीं थी और उसने इसका सामना करने की योजना भी बना रखी थी। उसने बिना किसी

1 डा० सुरेन्द्र नाथ सेन, अठारह सौ सत्तावन।
2 वही

व्यवधान के घेराबंदी बनाए रखने का निश्चय किया और प्रभावी युक्ति चालन के साथ मुट्ठी भर फौज को लेकर तात्या का सामने करने के लिए आगे बढ़ा। 1 अप्रैल को बेतवा का भयकर युद्ध लड़ा गया और एक बार फिर अंग्रेजो के अच्छे तोपखाने ने तात्या की फौज को तितर-बितर कर दिया। पहली पंक्ति ने ज्यादा विरोध नही किया....उनमें से अनेक या तो लड़े ही नहीं या फिर मैदान छोड़ गए। यह विश्वासघात था या भय ? इसके साथ साथ, झांसी से भी तोपों के गोले नही बरसे। अपनी पहली पंक्ति को छिन्न भिन्न होते देखकर दाहिने बाजू वाले दस्ते को पीछे हटता देखकर, तात्या ने, जो दूसरी पंक्ति की कमान संभाले थे, युद्ध भूमि से हट जाने का निश्चय किया। पीछे हटने के पूर्व, तात्या ने पीछे के जंगलों में आग लगवा दी और आग तथा उठने वाले धुंए के सहारे वह अपनी फौज का अधिकतर भाग निकाल ले गए।

किंतु झासी के बचाव का उनका उद्देश्य पूरा न हो सका। इस पराजय के लिए कौन जिम्मेदार था ? सिल्वेस्टर ने रानी की रक्षक सेना को दोषी ठहराया है।

"आखिर उनकी रक्षक सेना ने बाज की तरह झपट कर हमारे तोपखाने को नष्ट-भ्रष्ट क्यों नहीं कर डाला जबकि तात्या की फौज उनके बचाव के लिए कोशिश कर रही थी, इसकी कल्पना कर पाना भी हमारे लिए असंभव है। उनकी बंदूकों का सामना करने में हमारी पैदल सेना और हमारे तोपची कितनी ही कुशलता क्यों न दिखाते, उनकी अत्यधिक संख्या की जीत अवश्य होती।" सिल्वेस्टर ने यह भी कहा "लगता है वे मेजर गाल और कैप्टन फील्ड द्वारा नगर पनाह के सुंदर भाग पर झूठा हमला करने से डर गए से प्रतीत होते है।'[1] सर जान फोर्टेस्क भी सर ह्यू के आदेश पर किए गए झूठे हमले द्वारा उत्पन्न हुए भय के कारण रानी की फौजों की निष्क्रियता के लिए उन्हे दोषी ठहराते हैं। उनकी तापें बेकार हो गई थीं, उनके श्रेष्ठ तोपची मारे गए थे, शहर पनाह टूट चुकी थी, ऐसी हालत में अगर वे "दिखावटी" हमले से भयभीत हो गए और दुश्मन पर हमला करने की जोखिम नही उठाई तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। इसके स्थान पर वे यह कामना करके बैठे रहे कि तात्या की विजय होगी और वह उनकी मुक्ति के लिए आगे आएगा।

झांसी का पतन

झांसी का पतन अब दूर नहीं था। तात्या के पीछे हटते ही, सर ह्यू ने नए

1 जे० एच० सिल्वेस्टर : रिकलेक्शन्स आफ दि कैम्पेन इन मालवा ऐण्ड सेन्ट्रल इंडिया, पृष्ठ 101-02

जोश के साथ घेराबंदी की अपनी योजना क्रियान्वित की। रानी ने, बड़ी दूर दृष्टि के साथ आसपास के क्षेत्र में, घर फूंक तमाशा वाली रणनीति अपनायी। किंतु सर ह्यू के पास रसद की कमी नहीं थी क्योंकि मित्रवत् सिंधिया और ओरछा राज्य लगातार रसद भिजवाते रहे। तीसरी तारीख को विध्वंस-कारी हमला किया गया और उसके जवाब में (प्रति) रक्षकों ने भी और भयंकर सर्वनाशी गोलाबारी की। उन्होंने शत्रुओं पर हर तरह की मिसाइलें (प्रक्षेपणास्त्र) बरसाई, बारूद से भरे हुए मिट्टी के बर्तन, लकड़ी के कुंदे भारी भारी पत्थर और क्या कुछ नहीं फेंका। अंत में, पिछला दरवाजा चूर चूर हो गया किंतु सामने का प्रवेश द्वार उसके पीछे बड़े बड़े पत्थर ढेर करके बंद कर दिया गया था। फिर भी, दूसरी टुकड़ी ने एक दरार से होकर घुसने की कोशिश की। अब संघर्ष महल की ओर जाने वाली सड़कों पर होने लगा। रानी के सिपाही शेरों के समान लड़े। उन्होंने जैसा भयंकर युद्ध किया वैसा भयंकर युद्ध सम्पूर्ण विद्रोह के दौरान कहीं पर नहीं हुआ। हर घर से, हर कमरे से उन्होंने युद्ध किया। गोलियां ओलों की तरह बरसी। जमीन के एक एक इंच के लिए जम कर संघर्ष हुआ। अंत में महल पर कब्जा तो हो गया किंतु रानी के अंगरक्षकों के कब्जे में घुड़साल फिर भी रह गई। "उन लोगों की एक टुकड़ी घुड़साल के बाहर वाले जलते हुए कमरे में तब तक बने रहे जब तक बुरी तरह झुलस न गए, कपड़ों से लपटें निकल रहीं थी, अपने शिरों की ढालों से रक्षा करते हुए वे आक्रांताओं पर हमला कर उन्हें पीछे हटा रहे थे।[1]

सड़कों और गलियों पर दो दिनों तक संघर्ष चलता रहा और सारे नगर को बेरहमी से लूटा पाटा गया। दुर्लभ संस्कृत पुस्तकों का प्रसिद्ध पुस्तकालय जलाकर राख कर दिया गया। हर आदमी पर शक था कि वह दुश्मन है। बहुत से लोग भाग गए और जो भाग नहीं सके उन्होंने अपनी स्त्रियों बच्चों को कुंए में ढकेल दिया और फिर स्वयं भी कूद गए।"[2]

अंग्रेज प्रतिशोध की भावना से बोखला रहे थे क्योंकि भारत की जेजबेल—युवा, स्वाभिमानिनी, उत्साही, हठीली, दृढ़प्रतिज्ञ रानी—अभी भी जीवित थी, वे उसके खून के लिए प्यासे थे और उसका भयानक अंत उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।[3]

काल्पी की ओर

किंतु रानी ने अपने लिए किसी दंड की प्रतीक्षा नहीं की। उसी रात,

1 सरह्यू रोज की रिपोर्ट, अप्रैल 30, 1958

2 लीथे, पृष्ठ 276 और 259

3 लीथे पृष्ठ 236

अपने दत्तक पुत्र को अपनी पीठ पर बांध कर, वह अपने विश्वास पात्र विद्यमान अंगरक्षकों के साथ, पुरुष के वेश में घोड़े पर सवार हो उत्साह से अंधे लोगों के बीच कूद पड़ी और ओरछा की रक्षक पंक्ति के बीच से होकर निकल गई, वे लोग पहचान भी न पाए। दूसरे दिन सुबह जब रानी के निकल भागने का पता लगा तब तक वह मीलों दूर निकल चुकी थी। लेफ्टीनेंट वाकर की कमान में एक टुकड़ी रानी का पीछा करने के लिए भेजी गई किंतु रानी के कुछ विश्वासपात्र रक्षकों ने उसे रास्ते ही में उलझा लिया और तब तक अपने खून की अंतिम बूंद बहाई जब तक रानी काल्पी न पहुंच गई, इसके साथ ही वे भी चिर निद्रा में लीन हो गए।

झांसी के पतन के थोड़े समय बाद ही, हिटलाक ने 19 अप्रैल को बांदा के नवाब पर हमला किया। सात घंटे तक भयंकर युद्ध करने के पश्चात् नवाब की फौज तितर-बितर हो गई और नवाब भी अपनी सेना का काफी बड़ा हिस्सा बचाकर काल्पी की ओर निकल गए।

कोंच का युद्ध

झांसी का पतन हो चुका था, किंतु पेशवा का मुख्यालय, काल्पी अभी अविजित था। यह विद्रोही नेताओं के जमघट का केंद्र बन गया था। वहां पर, पेशवा परिवार के सबसे अधिक सक्रिय राजकुमार, राव साहब भी तात्या के साथ थे। झांसी की रानी उनके पास पहुंच चुकी थी और बांदा के नवाब भी वहां पहुंच रहे थे। बेतवा की पराजय के कारण हतोत्साहित हुए बिना, तात्या ने, अपने विद्याचातुर्य से पुनः सेना और साथ ही साथ तोपें इकट्ठी कर ली थी। उन्हें अन्य राजद्रोही प्रमुख व्यक्तियों का भी सहयोग मिल गया था। उन्हें पता था कि सर ह्यू उन पर शीघ्र ही छा जाएगा। काल्पी की ओर अंग्रेजी फौजों को बढ़ने से रोकने के लिए तात्या एक विशाल सेना के साथ, झांसी रोड पर काल्पी से 42 मील दूर कोंच नामक सामरिक महत्व के नगर की ओर बढ़ गए।

नगर के बाह्यांचल के जंगल, बाग और मंदिर उनके लिए अच्छे पनाह स्थल थे। सर ह्यू ने 7 मई को आक्रमण किया। उसने नगर में प्रवेश पाने के विचार से तिहरा आक्रमण किया। तात्या की फौजें हठपूर्वक अपने मोर्चों पर जमीं रही। उसकी पैदल सेना मुख्य सेना को बचाने और आगे बढ़ने में मदद देने के लिए अच्छी तरह लड़ीं, जब चार्ज किया गया तो उन्होंने अपनी बंदूकें एक तरफ फेंकी और तलवारें लेकर दुस्साहस पूर्वक भिड़ गए। सिल्वेस्टर ने लिखा है "उन्होंने हमारे घोड़ों और सैनिकों को जब तक उनमें से एक भी आदमी जिंदा

रहा, मारा काटा और चीर कर रख दिया। किंतु जब तक तात्या ने अंतिम रूप से युद्ध भूमि से निकल जाने का निश्चय किया तब तक उसकी पैदल सेना का भारी हिस्सा समाप्त हो चुका था, उसके तोपखाने पर कब्जा किया जा चुका था और प्रधान सेना में भगदड़ मच गई थी। जब वे काल्पी की ओर पीछे हटे तो वह भगोड़ों का भारी और नि सहाय दस्ता मात्र था।"

ग्वालियर में सैनिक विद्रोह

कोंच की पराजय के पश्चात् तात्या चिकरी चले गए जो जालौन के पास एक छोटा सा नगर है। प्रकट रूप में तो वह अपने माता पिता से मिलने गए थे, जो वहां पर रहे थे, वहां से वह गुप्त रूप से ग्वालियर की ओर निकल गए जहां पर वह सिंधिया की सेना को अपनी तरफ मिलाने के लिए अंतिम प्रयास करना चाहते थे। नगर में तात्या के कुछ संभावित समर्थक थे। ग्वालियर का नायक कोतवाल मूलतः बिठूर का था, इस बात से महाराजा और उनके प्रधान मंत्री परिचित नहीं थे। तात्या का दामाद भी वहीं पर रहता था। सम्भवतः इन्हीं लोगों से तात्या को इस बात का पता चल गया था कि सिंधिया की सेना में विद्रोह पनप रहा था। उनमें से अधिकांश सैनिक मराठा थे जिनका विचार था, कि पेशवा का साथ न देकर सिंधिया विश्वासघात कर रहे थे क्योंकि उन्हें राज्य तो पेशवा से ही मिला था, अतः उन्हें कंपनी बहादुर की सरकार का साथ देने की जगह पर नाना के झंडे के नीचे आ जाना चाहिए। ग्वालियर में थोड़े दिन ठहरने पर ही तात्या को पता लग गया कि सैनिक विद्रोह के लिए यह उचित अवसर था। उन्हें केवल ठीक मौके पर, अपना उद्देश्य बताना ही शेष रह गया था।

जिस समय ग्वालियर में तात्या अपने उद्देश्य के लिए समर्थक एकत्र करने के प्रयास में व्यस्त थे उसी समय विद्रोही नेताओं के खेमे मे कूंच की हार पर उग्र वाद विवाद हो रहा था। पैदल सेना रिसाला को कातर स्थिति में उन्हें छोड़ देने के लिए दोषी ठहरा रही थी। विलायतियों पर यह आरोप लगाया गया कि उन्होंने जिस दृढ़ साहस का उन्हें नाज था, वह युद्ध भूमि में नहीं प्रदर्शित किया। कुछ नेता तो किनारा कर गए थे। उनका इस सीमा तक नैतिक पतन हो चुका था कि जब उन्हें यह समाचार मिला कि सर ह्यू रोज काल्पी की ओर बढ़ रहा है तो अनेक टुकड़ियां तिरोहित हो गईं। कहा जाता है कि एक समय तो ऐसा आया जब किले और नगर में केवल 11 सैनिक रह गए थे।[1] किंतु बांदा के नवाब के अप्रत्याशित आगमन से स्थिति कुछ अच्छी हो गई, वह अपने साथ भारी फौज और तोपें भी लाए। यह तो नवाब के समर्थन के साथ रानी का प्रबोधन था कि आखिरी

1 ले० कर्नल डब्ल्यू मालसन दि रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया, 1857-59, पृष्ठ 128-29

सांप तक काल्पी को, जो उनका एकमात्र दुर्ग था, बचाएंगे और मलेच्छ अंग्रेजों का विनाश करके स्वर्ग मे जाने का अधिकार ले लेंगे जिसने उनकी निराशा को आत्म-विश्वास मे बदल दिया।"

काल्पी की सामरिक स्थिति

किले बंदी के लिए काल्पी का दुर्ग घटिया था किंतु मोर्चे के लिए यह बहुत ही श्रेष्ठ था। सीधी और ऊंची चट्टानों पर स्थित यह दुर्ग तीन ओर से गहरी तंग घाटियों द्वारा परिरक्षित था और पृष्ठ भाग पर यमुना नदी बह रही थी। इसकी किले बंदी अनेक खाइयों की वजह से और भी मजबूत हो गई थी। तंग घर की भूल-भूलैया में सड़क के आरपार खाइयों में और काल्पी नगर से दो मील दूर ठोस कारीगरी नमूनों वाले 'चौरासी' स्थित 84 मंदिरों की मोर्चे बंदी में तात्या की फौज की स्थिति काफी अच्छी थी।

दूसरी ओर सर ह्यू रोज और उनकी फौज के लिए काल्पी की ओर मार्च करना उनकी शक्ति और साहस की कड़ी परीक्षा थी। गर्मी स्वयं जल रही थी। जैसा कि सर ह्यू रोज ने अपने थके हुए आदमियो से कहा था कि विद्रोह की यह दुर्जेय शांति स्वय विद्रोहियों की तुलना मे अधिक खतरनाक थी। इससे उनकी सेना में और विशेष रूप से अंग्रेजों में तबाही मच गई थी जो रात में मार्च करने, बिना सोए रात भर गश्त लगाने और थकान की वजह से निःशक्त हो गए थे। अनेक लोग तेज धूप और प्यास के कारण मर गए क्योंकि झांसी और काल्पी के बीच कोई नदी भी नही थी, केवल कुएं का पानी ही था। परिणामस्वरूप उनकी संख्या काफी घट गयी यद्यपि एन्फील्ड राइफल ने कम होने की हीन भावना को काफी हद तक मिटा दिया था।

इन सामरिक असुविधाओं के साथ-साथ कुछ राजनैतिक कारण भी थे। मराठा पंडितों द्वारा सफल प्रोपेगंडा अभियान के फलस्वरूप, यमुना की घाटी के निवासियों की सहानुभूति विद्रोहियों के प्रति थी। ग्रामवासी भी शत्रुओं को उनकी डाक तथा सैनिक गतिविधियों की सूचना देकर तथा रसद की गाड़ियों के विषय में विद्रोहियों को बताकर उनकी सहायता कर रहे थे।

किंतु विद्रोहियों की शक्ति का सबसे बड़ा स्रोत यह भावना थी कि वे अपने श्रेष्ठ किले का, जो पश्चिम और मध्य भारत मे उनका एक मात्र शस्त्रागार था, बचाव कर रहे थे। विद्रोहियों के कब्जे में, यमुना के दक्षिणी तट पर स्थित काल्पी का दुर्ग पश्चिमी और साथ ही पूर्वी भारत में भी अंग्रेजी फौजों की एकाग्रता भंग कर रहा था। "जब तक काल्पी विद्रोहियो के कब्जे में था तब तक उनके पास यह कहने की शक्ति थी कि भले ही पूर्वी और पश्चिमी भारत अंग्रेजों

के कब्जे में हो किंतु उसका केंद्र तो उनके ही पास था।"[1]

विद्रोही नेताओं के लिए किले के महत्व को और मध्य भारत में शांति स्थापित करने के लिए इसको जीतने की आवश्यकता को समझते हुए प्रधान सेनाध्यक्ष ने सर ह्यू रोज की सहायता के लिए कर्नल मैक्सवेल की कमान में एक टुकड़ी भेजी। जनरल की नीति यह थी कि विद्रोहियों का, जब कि वे कूच की पराजय से उबर भी न पाए हों, तेजी के साथ पीछा किया जाए और उन पर हमला किया जाए।

15 मई को प्रथम वाहिनी ने काल्पी से छह मील दूर गुलौली नामक स्थान पर पड़ाव डाला। 22 तारीख को अंतिम रूप से उन पर विद्रोही सेना द्वारा हमला किए जाने के पूर्व दोनों पक्षों के बीच छुट-पुट मुठभेड हुई। किंतु आक्रांताओं को दो टूक जवाब भी मिला।

विद्रोही नेताओं ने अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया किंतु घनघोर युद्धों की एक श्रृंखला के पश्चात् उन्हे निराश हो जाना पड़ा। दूसरे दिन, सर ह्यू और उनके सैनिकों ने (जब) काल्पी दर्रे के मुहाने से होकर भीतर प्रवेश किया तब उन्हें सारा क्षेत्र और किला सुनसान ही मिला।

चुनौती पूर्ण आघात

काल्पी से, राव साहब और रानी ग्वालियर से लगभग 46 मील दूर गोथालपुर नामक स्थान पर पहुंचे। तात्या भी जल्दी ही वहां जा पहुंचे। अब उनकी स्थिति अत्यंत विपन्न थी। उनका अंतिम गढ़ भी छिन चुका था। उनका बागी युद्ध समाप्त प्राय: था। यदि उन्हें अब भी युद्ध चलाना ही था तो उनका सबसे पहला काम था अपने युद्ध सचालन के लिए किसी किले पर कब्जा करना।

विद्रोही नेताओं ने एक बैठक की, जिसमें कहा जाता है सैनिकों के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। सिपाहियों का विचार था कि अवध में रह कर युद्ध को अच्छी तरह चलाया जा सकता है जब कि रानी ने झांसी के पास ही करेरा या बुंदेल खंड में ही किसी अन्य स्थान के लिए सुझाव दिया। किंतु तात्या का विचार था कि बुंदेले उनके साथ सहानुभूति पूर्ण रवैया नहीं अपनाएंगे और उन्हें रसद पाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। राव साहब दक्षिण के पक्ष में थे।

दक्षिण में पेशवा का शासन काल समाप्त हुए अधिक समय नही बीता था और वहां के लोग उस समय भी पुराने दिनों की याद करते थे, ऐसा उनका विचार था। अत: उनकी भावनाओं को आंदोलित करने और उन्हें नाना की कमान में लाने के लिए अधिक कठिनाइयां नहीं उठानी पड़ेंगी। लेकिन सबसे

1 वही पृष्ठ 130

बड़ी जरूरत तो रुपए पैसे और रसद आदि की थी। उनकी आशाएं सिंधिया पर टिकी थी। अगर उससे उसके भूतपूर्व स्वामी के प्रति निष्ठा की भावना के लिए अपील की जाए और पेशवा के प्रति स्वामिभक्ति उसके मन में पैदा हो जाए तो इससे उन्हें अपने युद्ध संचालन के लिए अभूतपूर्व सहयोग मिल जाएगा क्योंकि दूसरे मुखिया भी सिंधिया के उदाहरण का अनुसरण करेंगे।

ऐसा लगता है इस योजना को सभी ने मान लिया। अंग्रेजों के खेमे में काल्पी की विजय पर अभी आनंदोत्सव मनाया जा रहा था, सर ह्यू रोज का इस शानदार उपलब्धि पर बधाई संदेश फौजी टुकड़ियों के मध्य घुमाया जा रहा था, इस बीच विद्रोहियों द्वारा ग्वालियर पर कब्जा कर लेने की स्तंभित कर देने वाली सूचना उन्हें मिली। युद्ध कला के इस चुनौती पूर्ण प्रत्याघात से अंग्रेज एक दम चकित हो गए। सर हैमिल्टन ने सोचा यह अविश्वसनीय था। "यह विचार उतना ही मौलिक और साहसपूर्ण था जितना अर्काट की जब्ती" ऐसा होम्स ने कहा।

लेकिन तीनों में से किस मराठा नेता ने इस शानदार सैनिक विद्रोह का संचालन किया? मेल्सन ने इसके लिए रानी का नाम लिया है। इस बात से सहमत होते हुए मजूमदार ने रावसाहब के दावे का खंडन किया क्योंकि वह, उनके विचार से "किसी भी तरह अपने आपको उनसे अलग नहीं कर सके" और तात्या टोपे भी इसलिए कि उन्होने अपना बयान देते समय कभी भी नाम कमाने की नहीं सोची जब कि ऐसे अनेक मौके उनके हाथ आए। किंतु होम्स ने तात्या का पक्ष लिया जो उतने ही साहसी और विदग्ध थे जितनी रानी थी। मैकेफर्सन की उस रिपोर्ट के अनुसार, जिसका समर्थन सर राबर्ट ने भी किया है; तात्या ने ग्वालियर जाकर काल्पी से निष्क्रमण का पूर्वानुमान कर लिया था। उसने सिंधिया की फौजों और उनके अधिकारियों से संपर्क किया और रायसाहब को आश्वस्त कर दिया कि ग्वालियर को कब्जा करने में उन्हें अधिक कठिनाई नहीं होगी।[1]

ग्वालियर—तात्या के हाथों में

योजना कोई भी क्यों न रही हो लेकिन एक भी गोली चलाए बिना ग्वालियर पर तात्या का कब्जा हो गया। 31 मई को विद्रोहियों की सेना ग्वालियर से आठ मील पर पहुंची। सीमा पर उनका किसी भी तरह का प्रतिरोध नहीं किया गया। सिंधिया विद्रोहियों के साथ युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा किंतु अंगरक्षकों को छोड़कर शेष सारी सेना ने युद्ध करने से इनकार कर दिया। विद्रोही सेनाओं ने 'दीन' का नारा लगाया जिसका प्रत्युत्तर सिंधिया की फौज से मिला और वे भी उनके साथ आकर मिल गए। अपने जनानखाने की सुरक्षा के लिए भी परवाह

1 सुरेन्द्र नाथ सेन, पृष्ठ 294

किए बिना, भयभीत महाराज, अपने अंगरक्षकों के साथ भाग गए और जब तक आगरा नही पहुंच गए घोड़े की काठी नहीं छोड़ी।

पहली जून को, तीनों मराठा नेताओं ने विजेता के रूप में नगर में प्रवेश किया। नाना को पेशवा घोषित किया गया और काफी जय-जयकार के साथ मनाए गए आनदोत्सव के बीच तड़क-भड़क वाली वेशभूषा में राव साहब को उनका प्रतिनिधि नियुक्त किया गया।

विद्रोहियों ने न तो प्रशासन में छेड़छाड़ की और न कर्मचारियों का ही फेर बदल किया। नगर को लूटा नहीं गया और कोई भी हिंसात्मक कार्य नही किया गया। सिपाहियों के वेतन का भुगतान करने के लिए केवल विशाल खजाने को ही कब्जे में कर लिया गया।

ग्वालियर पर कब्जा करने से सारे भारत में उसी प्रकार सनसनी फैल गई जिस प्रकार विद्रोह प्रारंभ होने के समय फैली थी।[1] विद्रोहियों के कब्जे में ग्वालियर होने का मतलब था बम्बई और दक्षिण भारत के साथ अंग्रेजों की संचार व्यवस्था ठप्प हो जाना। ग्वालियर का पतन, वर्षा काल के प्रारंभ के समय जब कि भीषण गर्मी पड रही थी उस समय हुआ और साल के ये महीने युद्ध के लिए बहुत ही प्रतिकूल होते है। यदि ग्वालियर को शीघ्र ही विद्रोहियों के कब्जे से न छुड़ाया गया तो तात्या को मराठा क्षेत्र में आसानी से पहुचने का मौका मिल जाएगा, जहां पर अब नाम मात्र को ही फौज शेष थी। सर ह्यू को सर्वाधिक भय यह था कि वह अपरिमित राजनैतिक प्रभाव और सैनिक शक्ति को, जो उन्हें ग्वालियर पर कब्जा करते ही प्राप्त हो गई थी, पाकर तात्या ग्वालियर की सुरक्षा का भार अन्य विद्रोही नेताओं को सौंपकर, दक्षिण की तरफ निकल जाएगा और पेशवा के समान ही साम्राज्य विस्तार कर लेगा। इन्दौर भी, ग्वालियर के उदाहरण का अनुसरण कर सकता है। अतः वर्षा ऋतु के आने से पूर्व ही, तात्या की गतिविधियों पर रोक लगाना बहुत ही महत्वपूर्ण था।

बिना समय खोए, सर ह्यू ने तात्या की ओर से कोई कदम उठाए जाने के पहले ही ग्वालियर पर पुनः कब्जा करने की एक ठोस योजना बनाई। 6 जून को काल्पी से चलकर वह 16 जून को मोरार छावनी पहुचे जो उस समय विद्रोहियों के कब्जे में थी। उन्होंने वहां से विद्रोहियों को मार भगाया और आगरा ग्वालियर रोड अपने कब्जे में कर ली जिसके कारण स्मिथ की कमान मे एक ब्रिगेड ग्वालियर से चार मील दूर, कोटा की सराय पहुंचने में सफल हो सका।

कोटा की सराय का युद्ध

इस बीच 18 दिन का मौका विद्रोहियों को मिला किंतु उन्होंने अपनी स्थिति

1 मालसन; पृष्ठ 387

मजबूत करने के लिए, अवश्यंभावी आक्रमण का सामना करने के लिए कुछ भी नहीं किया। इससे रानी को बहुत ही खीझ हुई, कहा जाता है रानी ने राज्याभिषेक समारोह में समय और धन की बरबादी का विरोध किया था। यह तो उस समय किया गया जब दुश्मन सिर पर आ गया। तात्या ने रानी से नेतृत्व संभालने और युद्ध के लिए तैयारी करने का अनुरोध किया। तदनुसार विद्रोही सेनाओं ने कोटा की सराय के पहाड़ी अंचल के पीछे अपने मोर्चे बनाए। यह मोर्चा अंग्रेजी फौजों को आगे बढने से रोकने के लिए सबसे अच्छा था क्योंकि इसके द्वारा ग्वालियर की तरफ आने वाली सड़क पर अधिकार कर लिया गया था।

स्मिथ ने, जो इस युद्ध के सेनानायक थे, रानी की फौजों पर भयानक हमला किया जिसका तीखा प्रत्युत्तर भी मिला। पुरुष भेष में घोड़े पर सवार रानी सारा दिन अपनी फौज को शत्रु पर आक्रमण करने के लिए उत्साहित करती रही। दूसरे दिन, स्मिथ को, रेन्स, रिक्स और हेनैज से नई फौजें प्राप्त हो गई।

रानी को वीरगति मिली

शत्रु द्वारा की जा रही भयंकर गोलाबारी के बीच, एक एक इंच आगे बढते हुए, अंग्रेजी फौजें दर्रा पार कर गई। चोटी पर पहुंचते ही, स्मिथ ने अपने दूसरों के साथ ही सामने से हमला किया जिसका रानी ने अप्रतिम साहस के साथ सामना किया। किंतु हमला इतना प्रचंड था कि रानी के सैनिक उसके सामने टिक न सके। जब रानी के बहुत से साथी मर खप गए तो उसे मजबूरन पीछे हटना पड़ा। भागते समय रानी का घोड़ा एक खाई पार करने में अड़ गया और इसी बीच एक गोली रानी के बगल में लगी और उसके सिर पर तलवार से चोट भी लग गई। रानी के स्वामिभक्त सहायक रामचंद्र राव घायल रानी को पास की एक झोंपड़ी तक ले गए वहां शीघ्र ही रानी की मृत्यु हो गई तथा पार्थिव शरीर को शत्रु किसी प्रकार असम्मानित कर पाने इसके पूर्व ही, दाह संस्कार कर दिया गया। इस प्रकार रानी को सम्मानपूर्वक वीर गति मिली। रानी के विरोधी सर ह्यू रोज ने भी उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्होंने रानी को सर्वश्रेष्ठ और अप्रतिम वीर विद्रोही नेता कहा।

रानी की मृत्यु से, फूल बाग से लेकर लश्कर तक मोर्चा बद्ध तात्या के सैनिकों में निरुत्साह व्याप्त हो गया। दूसरे दिन, तात्या की सेना, दुर्ग स्थित मुख्य सेना के साथ सर ह्यू रोज पर हमला करने के लिए बाहर निकल आई लेकिन थोड़ी देर की मुठभेड़ में ही उनको परास्त कर दिया गया। दूसरे दिन किले पर कब्जा कर लिया गया और महाराज जया जी राव को पुनः उनके पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया।

ग्वालियर की विजय का जश्न भारत के प्रत्येक प्रधान केन्द्र पर तोपों की सलामी देकर मनाया गया। राबर्ट नैपियर ने भगोड़े विद्रोही नेताओं का पीछा किया। 22 तारीख को जौरा अलीपुर में उन्हे घर दबाया। वे मुश्किल से कोई प्रतिरोध कर पाए और कुछ मिनट में ही युद्ध समाप्त हो गया।

विद्रोही सेना से सभी प्रमुख दुर्ग छिन जाने से, रानी की मृत्यु हो जाने से और सभी विद्रोही नेताओं के तितर-बितर हो जाने से मध्य भारत मे विद्रोह की रीढ़ टूट गई। सर ह्यू रोज ने सोचा कि उनका उद्देश्य पूरा हो गया था। दूसरे ही दिन उन्होंने अपने स्वास्थ्य के कारण अपना कार्य भार राबर्ट नैपियर को सौंप दिया।

8. मेरेथन दौड़

यह स्पष्ट था कि सर ह्यू रोज मराठा सेनाध्यक्ष की आत्मशक्ति को समझ नहीं पाए थे, वह तो अनम्य ही बनी रही। उसकी तोपें छिन गई थीं। 'पेशवा की सेना' बूचड खाना पहुंच चुकी थी। उसके पास पांव टिकाने की भी जगह नहीं थी। वह चारों तरफ से अंग्रेजों की सेनाओं से घिर चुका था। फिर भी उसको अपनी पराजय स्वीकार नहीं थी। थोड़े ही समय के भीतर मध्य भारत के नगरों, वनों, घाटियों और पर्वतों में तात्या का 'युद्ध नाद' प्रतिध्वनित हो गया। 22 जून को जौरा अलीपुर की पराजय से लेकर आगामी वर्ष की 7 अप्रैल को पकड़े जाने तक अपने चतुर्दिक शत्रु फौजों के बीच तात्या चूहे बिल्ली का खेल खेलते रहे जिसकी वजह से उन्हें विश्व के सर्वश्रेष्ठ गुरिल्ला सेनानायक के रूप में प्रसिद्धि मिली।

सर ह्यू रोज के प्रस्थान करने के पश्चात्, सेंट्रल इंडिया फील्ड फोर्स को भंग करके उसे डिवीजनों में बांट दिया गया। नैपियर के अधीन ग्वालियर डिवीजन बनाया गया जिसमें 'सिपरी' और गुना स्थित झांसी और काल्पी की रक्षक सेनाएं सम्मिलित थीं। राजपूताना फील्ड फोर्स का ब्रिगेड नसीराबाद में मेजर जनरल राबर्ट्स की कमान में रखा गया जब कि उसका नीमच स्थित दूसरा दस्ता पार्के की कमान में था। मालवा डिवीजन मेजर जनरल माइकेल की कमान में था, जिसका मुख्यालय महोबा में था। साथ ही बंगाल सेना का एक ब्रिगेड ब्रिगेडियर शावर्स की कमान में आगरा में था। इन आधा दर्जन सेनाओं से भीतरी घेरा बनाया गया था जब कि घेरे के बाहरी हिस्से में और भी अनेक फौजें थीं। सभी रैंकों के अधिकारियों की कमान में डिवीजन, ब्रिगेड, रेजीमेंट और फौजों के नियमित और अनियमित, दोनों प्रकार के दस्ते विद्यमान थे। प्रत्येक नया सेनापति, फील्ड का चार्ज लेते ही यह कहता था कि वह तात्या को पकड़ लेगा। सी० बी० और तात्या के सिर[1] के लिए नए नए महत्वाकांक्षी आते रहे। किंतु तात्या ने उन सभी को युद्ध कौशल में परास्त कर दिया और संपूर्ण क्षेत्र में "शिकार के पीछे लगे शिकारी कुत्तों के बीच" निर्द्वन्द बना रहा।

---

1 जे० एच० सिल्वेस्टर : वही पृष्ठ 196—97

व्यापक समर्थन

ग्वालियर की भयंकर पराजय के पश्चात स्वतंत्रता संग्राम दूसरे चरण में प्रवेश कर गया। तात्या ने संभवतः यह अनुभव कर लिया था कि व्यापक समर्थन के बिना युद्ध चला पाना मुश्किल है। जनता स्वतंत्रता संग्राम के विरुद्ध नहीं थी किंतु वे विद्रोही सेनाओं के भय से मुक्त नहीं थे। क्रांति की चिंगारी हर स्थान पर बुझती जा रही थी और अंग्रेजों का स्वामी के रूप में प्रभुत्व स्थापित होता जा रहा था। ऐसी स्थिति में तात्या ने देखा कि उसके लिए लोगों का सहयोग प्राप्त करना अत्यावश्यक है। अब वह गांवों में या तो ढोल पिटवा कर या राव साहब के नाम पर पोस्टर चिपकवा कर यह घोषणा करने के लिए कि उनकी सेना अंग्रेज फिरंगियों के विरुद्ध लड़ रही है जनता के विरुद्ध नहीं, और गांव वालों को उनकी फौज के पहुंचने पर उत्पीड़न या लूटमार के भय से भागना नहीं चाहिए। अपना अगला दस्ता पहले ही भेजने लगे। उनकी सेना को जिस चीज की भी जरूरत होगी वह ऊंचे दाम देकर खरीद ली जाएगी किंतु यदि देने से इंकार किया गया तब ताकत का इस्तेमाल किया जाएगा।

तात्या की दूसरी समस्या अपनी फौज की संख्या बढ़ाने की थी। उसने भारतीय राज्यों की फौजी टुकड़ियों की ओर ध्यान दिया। उन्हे अब भी उम्मीद थी कि वह सैनिकों में स्वामिभक्ति की भावना जगा सकेंगे और यह सचाई कि उनमें हर स्थिति में नई सेना खड़ी कर लेने की योग्यता थी, उन्हें कभी धोखा नहीं दे सकी। तात्या को वनवासियों और स्थानीय निवासियों का भी समर्थन मिल गया। अब उनकी सेना में विलायती, बुंदेला और ऐसे पेशेवर डकैत भी थे जो अच्छे निशानची थे तथा जंगलों में युद्ध करने में बहुत ही कुशल थे।

बदली हुई परिस्थितियों में तात्या ने अपनी रणनीति मे भी परिवर्तन कर दिया। यह हमला करो और भाग लो की रणनीति थी। उन्होंने शत्रु का आमने-सामने मुकाबला नहीं किया, अपितु गुरिल्ला युद्ध करना प्रारंभ कर दिया। इसके लिए, उन्हें उस क्षेत्र की, जिसमें युद्ध करना था, अच्छी खासी जानकारी थी। अब वह छोटी छोटी टुकड़ियों में थे, जिससे हमला किए जाने पर भाग निकलने मे सुविधा रहती थी।

सिल्वेस्टर के अनुभव

सिल्वेस्टर ने, जिसने तात्या की इस दुस्साहसी खोज में हिस्सा लिया था, तात्या की गुरिल्ला युद्ध कला के संबंध में अपने अनुभवों का विशेष वर्णन किया है। 'फुर्तीला गुरिल्ला सेनापति कोई भी तंबू, कनात, कोई भी रसद लेकर नहीं चलता था। ये सब तो जब भी उसे जरूरत होती थी लूट लेता था। जब उसके घोड़े बेकार हो जाते थे, तो वह उन्हें मरने के लिए सड़क पर

छोड़ देता था और लूटमार कर नए घोड़े इकट्ठे कर लेता था। यह सभी वह या तो हमारी चौकियों से वसूल करता था या फिर हमारे माल असबाब की गाड़ियों की लंबी लाइनों पर हमला करके। उसके फुर्तीले घोड़े हमारे आस-पास छाया की भांति मंडराते रहते थे और हमारी अतिश्रमित, अनियमित या अतिभारित नियमित घुड़सवार सेना से दूर हट जाते थे। हर नए सेनापति ने यह कल्पना की कि वह तात्या को पकड़ सकता है······असाधारण भाग दौड की जाती थी, अधिकारी और सैनिक अपना माल असबाब और अपने तंबू आदि भी एक तरफ पटक देते थे और रोजाना 40 मील तक बढ़ जाते थे, जबकि विद्रोही 50 मील आगे निकल जाते थे। अंत में यह होता था कि हमारे सभी घोड़े घायल हो जाते और हफ्ते दस दिन के लिए एक जगह ठहरना जरूरी हो जाता। पीछा करने में अत्यधिक शक्ति लगा दी जाती, सैकड़ों मृत ऊंट और अन्य पशु जंगल के हर कोने में दिखाई पड़ते और पीछा करने वालों तथा पीछा किए जाने वालो के लिए सडकें या नदियां कोई भी रुकावट न बन पातीं। उन पर वे तब तक आगे बढ़ते जाते जब तक काल कवलित न हो जाते।[1]

सिल्वेस्टर ने यह भी लिखा है कि जनता किस तरह तात्या की सहायता करती थी। उन्हें सभी सूचनाएं फौरन मिल जाती थी, खुले मैदान में वह कभी भी नहीं आते थे, जबकि दुश्मन को फौजे पास में हों। हमें कभी भी सही सूचना नही मिलती थी, उन क्षेत्रों में भी नहीं जहां कथित राजाओं के राज्य थे। लोगों की सहानुभूति विद्रोहियों के साथ थी। लगता था उन्हें रसद पाने में कठिनाई नहीं होती थी जब कि हमारी फौजों को एक-एक दाने के लिए बिलबिलाना पड़ता था।[2]

लुका-छिपी

जावरा अलीपुर के युद्ध में पराजित होने के पश्चात् राव साहब और बांदा के नवाब के साथ तात्या ने चंबल नदी पार की और जयपुर की ओर निकल गया। किंतु उस दिशा में उनके भाग जाने का पूर्वानुमान था इसलिए राबर्ट्स ने उन्हें पहले से ही रोकने का प्रबंध कर लिया था। तब तात्या ने टोंक की ओर प्रस्थान किया। भयभीत नवाब अपने कुछ साथियों के साथ दुर्ग में छिप गए और तात्या के पास चार तोपें तथा अपने सैनिक छोड़ दिए। इस प्रकार पुनः सैनिक शक्ति से युक्त होकर तात्या बूंदी की ओर बढ़े, किंतु राज्य के महाराव ने उन्हें प्रवेश करने से रोकने के लिए नगर की चहार दीवारी के दरवाजे बंद करा

1 जे० एब० सिल्वेस्टर, पृष्ठ 196–98

2 वही

दिए। इसलिए वह उदयपुर की ओर बढ़े क्योंकि होम्स लगातार उनका पीछा कर रहे थे। होम्स के उड़न दस्ते उन्हें रोक पाते इसके पहले ही वह बांसवारा पहुंच चुके थे। यहां उनका राबर्ट्स से सामना हो गया और एक हल्की मुठभेड़ के पश्चात् तात्या ककरौली की तरफ निकल भागे। बनास नदी के तट पर पार्के के साथ दूसरी मुठभेड़ हुई जिसके बाद तात्या चंबल की ओर बढ़ गये। यद्यपि नदी सुगाध नहीं थी फिर भी वह तेज धारा को पार कर गए और झालार पत्तन पहुंचे जो झील वाड़ा नामक एक देशी राज्य की राजधानी थी जबकि पार्के को पीछा करना रोक देना पडा क्योंकि नदी में बाढ़ आई हुई थी। तात्या ने झील-वाडा की सेना को जीतने की कोशिश की, राज्य पर 60,000 रु० का कर लगा दिया, 40,000 रु० से अधिक रकम इकट्ठी की, 30 बंदूकें हथिया ली और काफी सैनिक भी अपनी सेना में शामिल कर लिए।

इंदौर पर आक्रमण

सितंबर के प्रारंभ में तात्या ने विशाल सेना के साथ नगर छोड़ा और इंदौर की ओर बढे। उन्होंने अपने चारों ओर कसते जा रहे घेरे को तोड़ दिया। ऐसा होना असंभव लगता था किंतु उसने शत्रु सेना को धोखा देकर यह कर दिखाया। 'जिस तरह उसने अपनी स्कीम कार्यान्वित की, हठधर्मी के कारण उसकी प्रशंसा न करना असंभव है' ऐसा मेलसन का कहना है। किंतु उसकी स्कीम की गंध माइकेल को लग चुकी थी और उसने उसी समय जब वह स्वयं तात्या का रास्ता रोकने के लिए आगे बढ़ा तो कर्नल लाकहार्ट के नेतृत्व में एक दस्ता इंदौर का घेरा डालने के लिए भी भेज दिया। उन्हें पता लगा कि तात्या की फौज ने राजगढ की चहार दीवारी के निकट रात्रि विश्राम किया था। उन्होंने अपनी थकी फौज को विश्राम का मौका देने के विचार से अगली सुबह तक हमला न करने का विचार किया। लेकिन दूसरे दिन सुबह उन्हें पता लगा कि तात्या की फौज तो रात में ही कूच कर गयी थी। उसने पीछा किया और तब तक नहीं रुका जब तक व्यौरा के पास उन्हें दबोच न लिया और उन्हें हराकर 27 बंदूकें कब्जे में कर ली।

इन पराजयों और प्रतिकूलताओं में निर्भीक रहते हुए तात्या ने अपना कार्य-क्षेत्र बुंदेलखंड बनाने का निश्चय किया। इस समय तक मानसून आ चुका था और उसे कुछ आराम का मौका मिल गया जिसकी उसे सख्त जरूरत भी थी। उसने शीघ्र ही ईशर गढ़ पर हमला कर दिया और अपनी खोई हुई बंदूकों की क्षतिपूर्ति कर ली। इसके बाद, अपनी फौज को हिस्सों में बांटकर उन्होंने चंदेरी के सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण दुर्ग की ओर प्रस्थान किया और राव

साहब झांसी के निकट ललितपुर की ओर बढ़े। तात्या को उम्मीद थी कि वह चंदेरी की रक्षक सिंधिया की फौजों को अपनी तरफ तोड़ लेंगे किंतु उन्होने उसके साथ सहयोग करने से इंकार कर दिया। इसलिए वहां से तात्या मंगरौली की ओर बढ़ गए जहां पर 10 अक्तूबर को माइकेल ने उन्हें घेर लिया और पराजित कर दिया किंतु तात्या चंबल पार करके निकल गए और ललितपुर पहुंच कर राव साहब से मिल गए। मगर जल्दी ही उन्हें पता लग गया कि उनके सारे रास्तों की नाकाबंदी कर ली गई थी।

तात्या ने नर्मदा पार की

अप्रतिम शौर्यवान तात्या ने अब एक ऐसा अभियान प्रारंभ किया जिससे संपूर्ण भारत में चेतावनी की गूंज फैल गई। उन ब्रिटिश कमांडरों को, जो हाथ धोकर उनके पीछे पड़े थे, चकमा देकर तात्या नर्मदा नदी को पार करने में सफल हो गए। माइकेल के साथ मिल जाने के लिए दक्षिण की तरफ से मार्च कर रहे लेफ्टिनेंट कर्नल वीचर तात्या को आगे बढ़ने से रोक पाने में सफल न हो सके। पर्याप्त फौज और राय साहब के साथ तात्या होशंगाबाद से 40 मील दूर उस स्थान पर पहुंचे जो आजकल मध्य प्रदेश में है।

तात्या के नर्मदा पार कर लेते ही व्यापक भय फैल गया। वहां पर एक बड़ी सेना के साथ मराठा भूमि पर भूतपूर्व शासक पेशवा का भतीजा निवास कर रहा था। इस बात से तब तक भयभीत न हो पाना असंभव था जब तक कि तात्या संपूर्ण मराठा जनता को सशस्त्र विद्रोह के लिए उभार पाने में सफल न हो जाए। बम्बई की सरकार इससे सचेत हो गई। इसकी थरथराहट मद्रास तक जा पहुंची। किंतु यह भय वास्तविक कभी भी न हो पाया यद्यपि यह बहुत ही समयोचित था।

इस संबंध में, माल्सन ने लिखा है "इस प्रकार विद्रोह जब अंतिम सांसें ले रहा था तब एक ऐसा अभियान शुरू हुआ जो कि बारह महीने पहले शुरू कर दिया गया होता तो ब्रिटिश सार्वभौमिकता के लिए खतरनाक साबित होता, निजाम का साम्राज्य खत्म हो गया होता और दक्षिण भारत पर भी इसका स्थायी प्रभाव पड़ता।'[1]

किंतु तात्या के अनुमान के ठीक प्रतिकूल भोंसलाओं के इस राज्य के लोगों ने, कुछ दिन पूर्व जिनके राज्य के विलय ने उनकी चूलें ढीली कर दी थी, तात्या के प्रति विशेष विरक्ति दिखलाई। तात्या ताप्ती नदी को पार कर दक्षिण की ओर बढ़ना चाहते थे किंतु उस ओर उनके शत्रु सतर्क थे। बीचर ने पहले से ही

1 कर्नल जी० बी० माल्सन : खंड 1 पृष्ठ 239-40

दक्षिण की ओर घेरा डाल रखा था। अतः सतपुड़ा की संकरी शृंखलाओं से होकर, जो नाना की सही वरासत का क्षेत्र था, वहां प्रवेश करने में असफल हो जाने का तात्या और राव साहब का निराशापूर्ण अनुभव था। अपने प्रयास में असफल होने पर तात्या असीरगढ़ की तरफ बढे। यह क्षेत्र सापेक्षत: अधिक सुरक्षित था। इसके बाद वह कुरगांव की तरफ बढ़े जो निमाड़ में एक ध्वस्त नगर था। यहां पर होलकर की कुछ विद्रोही टुकड़ियां भी आकर उनसे मिल गईं।

स्वप्न जो पूरा न हो सका

इस प्रकार विचलित होकर तात्या 23 अक्तूबर को विशाल बम्बई आगरा मार्ग को पार करते हुए और अंग्रेजों की रसद भरी गाड़ियां लूटकर, टेलीग्राम तारों को तोड़ताड़कर पश्चिम की ओर बढ़े। उनका लक्ष्य बड़ौदा राज्य पर हमला करने का था जो मराठा साम्राज्य का दूसरा प्रमुख केन्द्र था और जहां पर पेशवा से सहानुभूति रखने वाले अनेक व्यक्ति निवास कर रहे थे। किंतु इस गतिविधि से भयभीत होकर अंग्रेजों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। गुजरात की तरफ जाने वाला तात्या का रास्ता राबर्ट्स ने रोक लिया, पार्क पूर्व की ओर से उनके पीछे लगे ही थे। ब्रिगेडियर हिल ने पश्चिम की ओर खान देश के पास उनका रास्ता रोक लिया। उन्हें पता लगा कि नर्मदा पार सदरलैण्ड का दस्ता उनका सामना करने के लिये मौजूद था। 50 गज चौड़े पाठ वाली नर्मदा नदी दोनों के बीच बह रही थी जिसके किनारे बहुत ही ऊंचे और दुःसाध्य थे। संख्या में अपने मुकाबले बीस गुनी दुश्मन की फौज के सामने नदी पार करना असंभव था किंतु तात्या ने इसे भी संभव बना दिया। हिम्मत पूर्वक नदी में छलांग लगाते हुए तात्या बडौदा की तरफ बढ़ गए। यह उनके लिए अंतिम मौका था। इस तीव्र भाग दौड़ और पीछा किए जाने के दौरान, तात्या के सैनिकों ने तेजी मार्च करने की उस योग्यता का प्रदर्शन किया, जिसके लिए भारतीय सैनिकों का शौर्य अप्रतिम है, माल्सन ने आगे भी लिखा कि 'मुझे यह कहना चाहिए कि इस बात में विश्व के किसी भी देश की सेनाएं उनका मुकाबला नहीं कर सकती।'[1] किंतु उनका पीछा करने वालों की संख्या बहुत ज्यादा थी। नगर केवल 50 मील दूर रह गया था जब 1 दिसंबर को छोटा उदयपुर के पास पार्क ने उन्हें बीच में ही रोक लिया। और इस प्रकार अंतिम मौका भी उनके हाथ से निकल गया।

निराशाजनक स्थिति

बड़ौदा को जीतकर अपने पक्ष में कर लेने का उनका स्वप्न धूल धूसरित हो

---

1 माल्सन, खंड 3, पृष्ठ 350

गया था, अतः तात्या और राव साहब ने राजस्थान के सुदूर दक्षिणांचल में बांसवाड़ा के जंगलों में शरण ली। अब उनकी स्थिति बहुत ही निराशाजनक थी। इंगलैण्ड की महारानी की घोषणा का लाभ उठाते हुए तात्या के मित्र, नवाब बादा ने भी उनका साथ छोड़ दिया और अंग्रेजों के सामने आत्म समर्पण कर दिया। उन्हें चारों तरफ से घेर लिया गया था। राबर्ट्स जंगल के पश्चिमी छोर पर डटे हुए थे जब कि कर्नल समरसेट को पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी छोर की रक्षा करने के लिए महोबा से भेजा गया था। नर्वदा नदी का दक्षिणी किनारा उनके लिए पहले से ही बंद था। किंतु दोनों नेताओं ने हार नहीं मानी। उन्होंने घेराबंदी तोड़ दी और दूसरी बार मेवाड़ में प्रवेश कर गए। उनका विचार था कि वहा के शासक और उनके एक सामंत, केशरी सिंह जिसने उन्हें मौके पर रसद भी दी थी, के बीच विद्यमान मतभेद का फायदा उठाया जाए। भीलवाड़ा से होकर गुजरते हुए तात्या ने दुबारा प्रतापगढ़ पर हमला किया जो उनके पूर्व अभियानों का केंद्र स्थल था किंतु शत्रुओं के कारण उन्हें इसमें सफलता नहीं मिल सकी और मेजर राक ने उन पर आक्रमण कर दिया। एक हल्की मुठभेड हुई और तात्या जीरापुर की तरफ निकल गए उन्हें वहां से भी महोबा से आए बेन्सन के दस्ते ने 29 दिसंबर को खदेड़ भगाया।

तात्या के नए सहयोगी

वर्ष 1859 के प्रारंभ में, तात्या, राजपूताना के दूसरे राज्य, कोटा की क्षेत्रीय सीमाओं में पहुंच गए थे। उनके साथ दो नए सहयोगी मानसिंह और फीरोजशाह आ गए। नरवर के राजपूत सामंत मानसिंह की अंग्रेजों के साथ कोई दुश्मनी नहीं थी किंतु वह अपने स्वामी सिंधिया से असंतुष्ट थे जिन्होंने उनको उनके चाचा की जागीर का वारिस नहीं माना था जबकि वह अपने आप को उस जागीर का सही वारिस समझते थे। 400 लोगों की एक छोटी सी फौज इकट्ठा करके उन्होंने पौड़ी के दुर्ग पर जबरियन कब्जा कर लिया था किंतु नैपियर ने उन्हें उस दुर्ग से भी निकाल बाहर किया जिसकी वजह से उनका मन अंग्रेजों की ओर से खट्टा हो गया था। अतः वह नववर्ष की शुरूआत के ठीक पूर्व नाहरगढ़ पहुंच कर तात्या के साथ मिल गए।

शाहजादा फीरोजशाह जो अवध से भाग निकले शाही मुगल खानदान के थे, गंगा नदी पार करने के बाद वह कालपी की राह मे राबर्ट्स की फौजों को धोखा देने में तो सफल हो गए थे किंतु रानोद में नैपियर के अप्रत्याशित फौजी हमले से न बच पाए, उनकी सेना अरौनी के जंगलों में तितर-बितर हो गई और वह किसी तरह निकल भागे। अब उन्होंने तन मन धन से तात्या का साथी

बनने का निश्चय कर लिया क्योंकि चंबल और नर्मदा से निःसृत तात्या के अभियानों की गूंज उनके कानों में पड़ चुकी थी।

सर्वव्यापी तात्या

जब तक तात्या को मुगल शहजादे की योजना का पता चल पाता तब तक वह चारों तरफ से घिर चुके थे। बचकर निकल पाना नितांत असंभव था। किंतु तात्या तो अपने शत्रुओं से अधिक ही चालाक थे। वह शत्रुओं के एक दस्ते की ठीक नाक के नीचे से प्रतापगढ़ के पास एक दर्रे से होकर जंगलों से बाहर निकल गए और जनवरी महीने मे इंदरगढ़ पहुंच कर शाहजादे से भेंट की। तात्या के इस प्रकार बच निकलने के संबंध में, टाइम्स समाचार पत्र ने अपने 18 जनवरी के संस्करण में यह लिखा था कि तात्या टोपे सर्वव्यापी मालूम होता है। लगभग आधा दर्जन फौजी दस्ते उसके पीछे पड़े हुए थे किंतु उसने उनके बीच से ही खिसक जाने की व्यवस्था कर ली। अनेक देशी राजाओं का तात्या के साथ मित्रवत् व्यवहार है इसी वजह से उसे कैद कर पाना और उसका पीछा करना मुश्किल काम है।'

किंतु दो राजाओं (मानसिंह और फीरोजशाह) की सैन्य शक्ति मिल जाने पर भी तात्या की स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ। तात्या की संपूर्ण भाग दौड़ के दौरान उसके साथी इतनी भारी संख्या में उससे अलग होते रहे कि इस समय उसकी सेना में इन दोनों राजाओं की भी सैन्य शक्ति मिलाकर लगभग 2,000 व्यक्ति ही रह गए थे। दुश्मन ने इंदरगढ़ के चारों ओर अपनी मजबूत घेराबंदी कर ली थी और भाग पाने का कोई भी रास्ता शेष नहीं था। उन्हें उत्तर में नेपियर द्वारा, उत्तर पूर्व में ब्रिगेडियर शावर्स द्वारा, दक्षिण में माइकेल द्वारा और पश्चिम तथा दक्षिण पश्चिम में ब्रिगेडियर होनर द्वारा, जो नसीराबाद ब्रिगेड की कमान संभाले थे, घेर लिया गया था।

किंतु, जैसा सेन का कथन है, तात्या ने इन सभी ब्रिटिश सेनाध्यक्षों पर दुलत्ती-सी झाड़ दी। वे इस श्रेष्ठ विद्रोही के चतुर्दिक ताना बाना बुनकर ख्याति लिप्सा के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहे थे। जरा होनर की खीझ का अंदाजा करें जब उसे इंदरगढ़ पहुंचने के ठीक एक दिन पहले यह पता लगा कि तात्या तो वहां से अपना बिस्तर गोल कर चुका था। मगर बिल्कुल अप्रत्याशित रूप से ब्रिगेडियर शावर्स ने 14 जनवरी को उसे देवास में घर दबोचा जिसकी वजह से जयपुर की तरफ तात्या को मार्च कर पाने में अड़चन आ गयी। ब्रिगेडियर ने तात्या की सेना के काफी बड़े हिस्से को समाप्त कर डाला किंतु उनकी पकड़ में न आ पाया क्योंकि तात्या एक बार फिर हाथ में आते आते रह गए।

'वह कैसे बच गए वास्तव मे चमत्कार हैं' माल्सन ने कहा, जबकि ऐसा लगता है कि 'टाइम्स' के सब्र का पैमाना सरकार की ओर से भर गया था क्यों कि 20 जनवरी के अपने संस्करण में उसने यह लिखा : 'सभी प्राधिकृत व्यक्ति यह जानने का दावा करते है कि तात्या कल कहां था' इस बात के होते हुए भी कि वह अगले दिन बिल्कुल भिन्न और इतने दूरवर्ती स्थान पर पहुंच जाएगा जहां तक वह इतने अंतराल के भीतर यथासंभव मार्च कर पाता। वे उसकी तुलना झील मे तैर रहे उस बत्तख से करते जो अचानक गोता लगाता है और उस समय अपना सिर बाहर निकालता है जब उसकी बिल्कुल ही संभावना नहीं होती।'

तात्या, फीरोजशाह के साथ सीकर की तरफ निकल गए जो एक छोटी सी राजपूत रियासत की राजधानी थी। वहीं पर कर्नल होम्स के दस्ते ने उन्हें घेर कर हमला कर दिया। सीकर का युद्ध ब्रिटिश फौजों के साथ तात्या की अंतिम मुठभेड़ थी।

परोन के जंगलों में

सीकर की घोर पराजय के बाद, विद्रोही बिखर गए। छह सौ सैनिको ने बीकानेर के राजा के पास आत्म समर्पण कर दिया और दो राजकुमारो (मानसिह और फीरोजशाह) के आत्म समर्पण की शर्तों के विषय में अंग्रेजों के साथ बातचीत शुरू हो गई थी। अनेक छोटे-मोटे देशी राजाओं ने भी महारानी विक्टोरिया की घोषणा का फायदा उठाते हुए तात्या का साथ छोड़ दिया था। यह बात साफ हो गई थी कि अब युद्ध चालू रहना व्यर्थ था और वे काफी समय तक दुश्मन से बच नही पाएंगे। अब वे एक साथ रहकर सुरक्षित नही थे अपितु छोटी-छोटी टुकड़ियों में बंटकर घने जंगलो के और घाटियों के, जो उनके चारो ओर थी, शत्रु के साथ लुका छिपी ही कर सकते थे। अतः तात्या ने यह निश्चय किया कि अब वह रायसाहब और फीरोजशाह से अलग हो जाएं। तात्या ने दो रसोइयो, एक भृत्य, तीन घोड़ों और टट्टू के साथ रायसाहब से, जो उनके मालिक और युद्ध सहयोगी थे, विदा ली। अलग होना दोनों के ही लिए बहुत दुःखद रहा होगा क्योंकि कालपी की अपनी विजय के बाद दोनों ही एक दूसरे के सुख-दुख के साथी रहे थे। वे फिर कभी न मिल पाने के लिए ही अलग हुए क्योंकि दोनों के भाग्य में फांसी का फंदा ही था।

अब तात्या ने परोन के जंगलों से, जहां मानसिंह का गुप्त आवास था, अपनी अकेली राह पकड़ी तो दोनों राजकुमारों ने शत्रुओं के सभी हमलों से बचाव करते हुए, सिरौंज के जंगलों मे शरण ली। किंतु यहां पर भी वे काफी समय

तक ठहर न पाए। अंग्रेजों ने विद्रोह की अंतिम चिनगारी को भी बुझा देने का पक्का निश्चय कर लिया था। अतः उन्होंने जंगल का चप्पा-चप्पा छान डालने की कोशिश शुरू की। किंतु उन्हें पता लगा कि रावसाहब और फीरोजशाह मानो हवा में विलीन हो गए हों। उनके विषय में तब तक कोई जानकारी नहीं मिली जब तक कि विद्रोह पूरी तरह कुचल नहीं दिया गया।

तात्या राबिन हुड जैसे

तात्या परोन के जंगलों में अनाक्रांत घूमते रहे और कुछ समय तक पकड़े नहीं जा सके। गत आठ महीनों में पीछा करने वालों और पीछा किए जाने वालों को आराम नसीब नहीं हुआ। यह 'द्रुतगति वाला' तात्या, जैसा कि सिल्वेस्टर ने लिखा है, सेनाध्यक्षों को भागदौड़ के लिए बाध्य किए रहा।

सिल्वेस्टर ने तात्या की तुलना राबिन हुड से की है। तात्या की फौज में अधिकतर बनवासी और कुछ डाकू भी थे जो अच्छे निशानेबाज थे तथा जंगलों में अच्छी तरह लड़ लेते थे और जंगलों में वन्य जातियों के समान ही रहते थे। उनमें से अधिकतर ऊंटों और टट्टुओं पर सवारी करते थे, प्रायः जूता-चप्पल भी नहीं पहनते थे, पथरीली राह पर ठोकर से बचने के लिए प्रायः अपने तलुओं में चिथड़े लपेट लेते थे। वे रात में कुछ सघन घाटियों में पड़ाव डालते थे, खाते पकाते और सोते थे किंतु हर समय पूरी चौकसी का इंतजाम रखते थे, शायद ही कभी उन पर आश्चर्य करने का मौका मिला हो और साथ ही लगातार कई दिनों तक के लिए नजरों से ओझल हो जाते थे। उनको कई बार घेर भी लिया गया और हर बार उनके निकल भागने की ही खबर मिली। उनकी परंपरा थी कि हमला किए जाने पर छोटी टुकड़ियों में बंट जाते थे जिससे उन्हें बच निकलने में सहूलियत होती थी किंतु साथ ही उनका एक निश्चित मिलने का स्थान भी रहता था जहां वे थोड़ी देर बाद इकट्ठा हो जाते थे। हमारे कुछ श्रेष्ठ घुड़सवार अधिकारी उनका पीछा कर रहे थे किंतु वे इस द्रुतगामी वर्ग को कभी भी न पकड़ सके। उसे तो कोई तब तक दूर से भी नहीं देख पाया था जब तक कि मानसिंह ने उसके साथ विश्वासघात करके उसे हमें पकड़वा नहीं दिया।[1]

---

1 जे. एच. सिल्वेस्टर पृष्ठ 198-99

9. तात्या की गिरफ्तारी और प्राणदंड

अप्रैल 1959 के अंत तक, सभी विद्रोहियों में अंतिम और सर्वश्रेष्ठ, तात्या नाटक की प्रभावशाली आत्मा—को बंदी नहीं बनाया जा सका था। उसने अपनी गिरफ्तारी के लिए किए गए सभी प्रयास निष्फल कर दिए थे। जब सैनिक प्रयास असफल हो गए तो अंग्रेजों ने विश्वासघात का सहारा लिया। नेपियर के निर्देशानुसार, मेजर मीड अपनी सुप्रसिद्ध 'घुड़सवार सेना' के साथ परोन के जंगलों का, जहां पर तात्या अपने साथी मानसिंह के साथ छिपे हुए थे, चप्पा-चप्पा छान रहे थे। मूलत: मीड, ग्वालियर की सेना में ब्रिगेड मेजर थे और जब उनकी सेना ने विद्रोह किया तो वह आगरा खिसक गए थे। वहां पर विद्रोहियों के साथ हुई अनेक मुठभेड़ों में, उन्होंने अपना एक फौजी दस्ता बना लिया था जो 'मीड की घुड़सवार सेना' के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। जून में, जब सिंधिया की अपनी फौज ने विद्रोह कर दिया और वह आगरा भाग गए तो मीड को सर ह्यू रोज को कैम्प तक उन्हें पहुंचाने के लिए उनका अंगरक्षक चुना गया। ग्वालियर पर पुन: कब्जा करने के पश्चात्, सर ह्यू रोज ने उन्हें विद्रोहियों को पकड़ने का आदेश दिया।

मानसिंह का स्वपक्ष त्याग

मानसिंह में मराठा सेनानायकों की-सी मजबूती नहीं थी। लगातार साल भर तक कठोर और लड़खड़ाते गुरिल्ला क्रिया कलापों से वह पस्त हो गये थे। उनके दिमाग में हर समय यह कीड़ा रेंगा करता था कि जहां तक उनके सामंत स्वामी सिंधिया का संबंध है वह विजातीय हो गए हैं। अपनी संपत्ति का कुछ भाग पुन: प्राप्त करने के लिए सिंधिया के साथ बिचवई की संभावना सहित पूर्ण क्षमादान के प्रस्ताव का मानसिंह पर क्या प्रभाव पड़ सकता है, इसके बारे में अंग्रेजों ने सोचा। तात्या अब भी पहुंच से परे था। किंतु मानसिंह के टूट जाने पर तात्या को काबू में किया जा सकता था। अत: उन्होंने मानसिंह की स्वार्थ लिप्सा का लाभ उठाने का निश्चय किया। शीघ्र ही मानसिंह अंग्रेजों के साथ सौदे बाजी करने

लगा। इस बीच, मीड ने मानसिंह की रानियों और उसके परिवार के अन्य सदस्यों को अपने कैम्प मे लाने की व्यवस्था की और उन्हें बंधक बना लिया। इस वजह से भी मानसिंह टूट गया। निराशा की स्थिति में, मानसिंह ने 2 अप्रैल को मीड के कैंप में प्रवेश करके आत्म समर्पण कर दिया। किंतु मात्र आत्म समर्पण से ही उसे अपनी वह जागीर नए मित्रों से नहीं मिल पाई जिसकी वजह से वह विद्रोही बना था। उसने ऐसा अनुभव किया कि अंग्रेज बदले में आत्म समर्पण से कुछ और ज्यादा चाहते हैं। और वे जो कुछ चाह रहे थे उसे देने के लिए मानसिंह अनिच्छुक भी नहीं था। मीड लिखते है कि मानसिंह ने अपने आत्म समर्पण के बाद समय समय पर जो संकेत दिए उनसे मुझे विश्वास हो गया था कि यह उसकी शक्ति मे था कि वह हमें तात्या टोपे को स्तंभित कर देने का मौका दे सकता है और मैंने वह सभी कुछ किया, जिससे वह मेरे संकेतों से यह समझ ले कि सरकार के पास उसके जागीर के दावे के लिए किस तरह के सेवा कार्य की आवश्यकता थी। इस बीच, मीड ने मानसिंह के परिवार को इस लिए बंधक बना रखा था कि वह तात्या के साथ विश्वासघात करने के लिए मजबूर हो जाए।[1] उसे तात्या के साथ विश्वासघात के लिए तैयार करने में मीड को लोहे के चने चबाने पड़े। अंत में, 7 अप्रैल को मानसिंह इस बात के लिए तैयार हुआ कि वह तात्या को मीड के हाथो में सौप देगा।

तात्या की गिरफ्तारी

तात्या को पहले से ही जानकारी थी कि मानसिंह मीड के कैंप में था। जैसा उसने अपने बयान में कहा है कि जो दो महीने आराम का मौका उसे मिल गया था उससे वह पुनः सारे देश में अपनी गतिविधि सक्रिय करने का विचार कर चुके थे। ऐसा लगता है कि सिरोंज के जंगल मे 9000 सैनिकों के साथ छिपे हुए उन विद्रोहियों के साथ उनकी बातचीत चल रही थी जो फीरोजशाह के साथ थे। मीड के कैंप में भी तात्या के गुप्तचर थे और मानसिंह को इस बात का भय था कि अगर तात्या को उसकी दोहरी नीति का जरा सा भी संदेह हुआ तो वह उनके हाथों से निकल जाएगा। अत. मानसिंह ने एक झूठा बहाना बनाकर तात्या के साथ बातचीत करने की व्यवस्था की। उसने इस अभियान में मीड को या अंग्रेजी फौज की टुकड़ियों को शामिल न होने के लिए राजी कर लिया। उसने घात लगाने के लिए देशी सैनिकों की एक छोटी सी टुकड़ी को अपने साथ रखा और अपने असंदेही अतिथि को उस गुफा तक ले गया जहां पर तात्या और वह प्रायः मिला करते थे। आधी रात के समय, जब तात्या गहरी नींद में थे तब मानसिंह के आदमी छिपने की जगह से बाहर निकल आए और तात्या को पकड़ लिया

गया तथा बेड़ियां डाल दी गई, उनके हथियार स्वयं मानसिंह ने छीन लिए। तात्या के दोनों रसोइये भाग गए। तात्या के पास एक तलवार, एक खुखरी, तीन सोने के भुज बंध और लगभग 100 सोने की मोहरें थी।

मुकदमा

दूसरे दिन उन्हे मीड के कैंप में लाया गया और तुरंत सिपरी भेज दिया गया। 15 अप्रैल को, "विद्रोह में शामिल होने तथा जनवरी 1857 से दिसंबर 1858 के बीच अंग्रेज सरकार के खिलाफ युद्ध में, विशेष रूप से झांसी और ग्वालियर के युद्ध मे भाग लेने के आरोप पर कोर्ट मार्शल किया गया।"[1] अंग्रेज सरकार कानपुर हत्या कांड में उनकी सहायराधिकता की बात को साबित करने के लिए जी तोड़ कोशिश कर रही थी। उन्होंने कानपुर के पुलिस कमिश्नर को, जो हत्याकांड की छानबीन कर रहे थे, तार द्वारा निर्देश भेजा कि वह सभी सुसंगत सामग्री मीड के उच्चाधिकारी नेपियर के पास तुरंत भेज दें, किंतु सूचना केवल एक दिन देर से मिल पाई। इसलिए, हत्या का आरोप उन पर नहीं लगाया जा सका।

जब तात्या को मुकदमे के बारे मे बताया गया और यह कहा गया कि वह अपने बचाव के लिए सबूत इकट्ठा करें तब उन्होंने शांति पूर्वक जवाब दिया कि उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध करने से, जैसा कि मैंने किया है, मुझे मृत्यु के लिए तैयार रहना होगा। उन्होंने मुकदमे में भाग लेने से इनकार कर दिया।

अपने बचाव में उन्होंने यह तर्क दिया मैंने वही कुछ किया जो कालपी पर कब्जा किए जाने तक मेरे स्वामी नाना ने मुझे करने के लिए आदेश दिया और उसके बाद मैंने राव साहब के आदेशों का पालन किया। मैंने राज्य के विरुद्ध कुछ भी नहीं किया। मेरा अंग्रेज पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की हत्या से भी कोई संबंध नहीं है और मैंने किसी को फांसी पर चढ़ाए जाने के लिए भी आदेश नहीं दिया।

उन्होंने साक्षियों से कोई भी प्रश्न पूछने की इच्छा नहीं की। जैसा कि अंग्रेज अधिकारियों और उपस्थित समाचार पत्रों के संवाददाताओं ने लिखा है वह गरिमा और वीरता के अनुकूल आचरण कर रहे थे; विनम्रतापूर्वक पूछे गए सुसंगत प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में और स्पष्ट रूप से दे रहे थे किंतु, अनावश्यक तथा छिछोरे प्रश्नों के जवाब में उनका उत्तर होता था 'मालूम नहीं।' टाइम्स के संवाददाता ने लिखा है, 'किसी औसतन उच्च अधिकारी के जाने के समय

1 थामस हेनरी थार्टन; जरनल सर रिचर्ड मीड, पृष्ठ 70 से 73

उसकी मुखाकृति पर अद्वितीय विजय की झलक दिखलाई पड़ती थी किंतु मेजर मीड़ के लिए ऐसा लगता है तात्या टोपी के मन में सम्मान की भावना थी।

कोर्ट-मार्शल का निर्णय तो पूर्व निश्चित ही था। फारेस्ट ने लिखा है, 'वह उन जघन्य अपराधों का दोषी पाया गया जिनका उस पर आरोप लगाया गया था और उसे फांसी की सजा दी गई।' उन्होंने जीवन के लिए अभिलाषा नहीं व्यक्त की। इसके ठीक प्रतिकूल, अपना मुकदमा शुरू होने के पहले ही, उन्होंने यह अनुरोध किया कि जितना शीघ्र संभव हो उन्हें इस संकट से छुटकारा दिला दिया जाए। 'मुझे तोप से उड़ा दो या फांसी पर लटका दो।' अपनी हथकड़ी और बेड़ी दिखलाते हुए उन्होंने कहा 'मगर मुझे इनसे छुटकारा दे दो।'

उन्होंने अपने परिवार के किसी सदस्य से भेंट करने की इच्छा नही व्यक्त की मगर अपने बच्चों के लिए प्यार व्यक्त किया और यह प्रार्थना की कि जो कुछ उन्होंने किया उसमें उनके वृद्ध माता-पिता का हाथ नहीं था अतः उनके कार्यों के लिए माता-पिता को दंडित न किया जाए। लेकिन अंत तक उन्होंने कानपुर हत्याकांड में निर्दोष होने की बात की।

और मृत्यु

तात्या को 14 अप्रैल सायं 4-00 बजे सिपरी के दुर्ग के पास परेड मैदान में, रक्षक सेना की टुकड़ियो द्वारा बनाए गए घेरे के बीच हजारों दर्शकों के मध्य फांसी पर लटकाया गया। वेचारे दर्शक चुपचाप आंखों में आंसू भरे फांसी का दृश्य देख रहे थे।

ज्यों ही तात्या के हाथों को हथकड़ी से मुक्त किया गया, वह धीर कदमों से फांसी के तख्ते पर चढ गए और महान शौर्य एवं वीरता के साथ फांसी के फंदे को अपने गले में डाल दिया।

उनका शरीर चार घंटों तक लोगों के बीच प्रदर्शन के लिए लटकता रखा गया। इसका उद्देश्य शायद उन विद्रोहियों के हृदय में भय का संचार करना था जिन्होंने शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ उठ खड़े होने का साहस किया था। जब धुंधलका होने पर उनका शरीर उतारा गया और रक्षक हट गए तब कहा जाता है कि उनके भारतीय और साथ ही अंग्रेज दोनों ही वर्गों के अनेक प्रशंसक उस व्यक्ति की अंतिम झलक पाने के लिए इकट्ठे हो गए जिसने शक्तिशाली अंग्रेज सेनापतियों को नाकों चने चबा दिए थे। एक किंवदंती प्रसिद्ध है कि उनमें से कुछ ने तो स्मृति चिह्न के रूप में उनके बालों के गुच्छे भी काट लिए और अपने साथ ले गए।

क्या सजा न्यायोचित थी ?

कुछ लेखकों द्वारा तात्या को दिए गए दंड के न्यायोचित्य पर प्रश्न उठाया है। उनमें से एक, 'भारत के मित्र' लिखते हैं कि 'राजघरानों, जमींदारों और साहसिकों की उस भीड़ के बीच जो विद्रोहियों का नेतृत्व करने के लिए आगे बढ़े, एक तात्या टोपे ही ऐसे व्यक्ति थे जिनके इस दुर्भाग्य पर भारत में दुख की सांस ली जाएगी।'

मीड के जीवनी लेखक—फारेस्ट और थार्नटन दोनों ने कहा है कि तात्या को मृत्यु दण्ड ला आफ दि लैंड (1857 का अधिनियम 14) के अनुसार दिया गया था। थार्नटन ने निर्णय को उचित ठहराते हुए लिखा है कि 'यद्यपि हत्याकांडों' में उनका हाथ न्यायिक रूप से साबित नहीं हुआ था'' ·· ···किंतु वह सह-अपराधी तो थे ही चाहे आदि प्रवर्तक रहे हों, अधीनस्थ एजेंट रहें हों या फिर सहायक रहे हो इससे कोई खास फर्क नही पडता इससे कोई युक्ति युक्त शंका नहीं की जा सकती।'[1]

लेफ्टीनेंट कर्नल डब्ल्यू मालसन (कर्नल जी० बी० मालसन नहीं अपितु अन्य) कानूनी बात विवाद के पचड़े में न पड़ते हुए किंतु तात्या पर निंदात्मक आक्षेप करते हुए कहते है 'खूनी गुंडा बदमाश, उसे तो हजार बार फांसी दिया जाना भी हल्का दंड होता।'

फारेस्ट ने कहा है कि तात्या सरकार के खिलाफ युद्ध का संचालन करने में जघन्य अपराध का दोषी था किंतु किसी विदेशी सरकार के खिलाफ युद्ध का संचालन कोई जघन्य अपराध नहीं है भले ही वह उस समय के कानून की नजर में अपराध रहा हो। किंतु असल प्रश्न तो यह है कि क्या वह कानून तात्या पर लागू होता था। कर्नल जी० बी० मालसन को इसका संदेह था कि परवर्ती काल में तात्या को दिए गए दंड की पुष्टि की जाएगी और उन्होंने यह तर्क दिया है कि तात्या पैदायशी ब्रिटिश नागरिक नहीं था। उसके जन्म के समय उसका स्वामी शासक था। वह उस जाति की स्वामिभक्ति और उसके प्रति ईमानदार रहने के लिए बाध्य नहीं था जिसने उसके स्वामी को लूट लिया था।"[2]

इसके अतिरिक्त इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि तात्या पर हत्या का आरोप भी नहीं लगाया गया था। क्या अंग्रेजों ने अनेक विद्रोही नेताओं के प्रति, जिन्होंने तात्या के जैसे ही अपराध किए थे, दया नहीं दिखाई

---

1 थामस हेनरी थार्नटन पृष्ठ 20

2 ले० कर्नल डबल्यू मालसन, दि रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया, (1837-39 शिमला 1908) पृष्ठ 232

थी ? किंतु तात्या के मामले में तो हमें यह कहना ही होगा कि अपराध की तुलना में दंड बहुत अधिक था।

माल्सन ने टाइरोल से राष्ट्रीय वीर होफर, जिसे नैपोलियन ने फांसी के तख्ते पर लटकाया था और तात्या के बीच समरूपता का विवेचन करते हुए कहा है कि परवर्ती काल ने नैपोलियन के कृत्य की निंदा की है। दोनों वीरों ने विदेशी सत्ता के खिलाफ युद्ध किया था। 'दोनों ही अपने देश वासियों के नेता थे एक था यूरोपीय, जो आज भी दुनियां में प्रसिद्ध है, और दूसरा था एक मराठा वीर।' माल्सन ने एक प्रश्न यह उठाया है, 'कौन जानता है कि चंबल, नर्वदा और ताप्ती की घाटियों में, उसका नाम सम्मानपूर्वक नहीं लिया जाता है ?

माल्सन की बात भविष्यवाणी साबित हुई। केवल चंबल, नर्वदा और ताप्ती की घाटियों में ही नहीं, अपितु हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक और राजस्थान से बंगाल तक सारे देश में तात्या का स्थान लोगों के हृदय में विद्यमान है। उन्होंने ऐसा युद्ध लड़ा जिसमें उनकी पराजय हुई किंतु उन्होंने अपने देश और राष्ट्र की परंपराओं के अनुरूप युद्ध किया और उनका नाम सदैव एक राष्ट्रीय वीर के रूप में सम्मान पूर्वक लिया जाता रहेगा।

10. अंत और प्रारंभ

तात्या की मृत्यु के साथ ही, 1857 के विद्रोह की अंतिम चिनगारी भी बुझ गई। जिस शानदार तरीके से उन्होंने युद्ध का संचालन किया उससे अपने लिए भारत के इतिहास में अविस्मरणीय स्थान बना लिया। उनकी महानता उनके अथक परिश्रम और स्वतंत्रता संग्राम के प्रति उनकी निष्ठा में निहित है और उन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए एक कर्मयोगी के समान युद्ध किया। उन्होंने विद्रोह की पताका अपने स्वामी से अपने हाथों में ली और उसे तब तक उठाए रखा जब तक वह ऐसा कर सके। उन्होंने उस समय भी युद्ध किया जब उन्हें पता था कि युद्ध असमान है और संघर्ष व्यर्थ है। विद्रोही नेता उनसे मिले और छोड़कर भी चले गए। फौजें उन्हें इतनी भारी संख्या में छोड़ जाती थी कि वह प्राय: बिखर जाती थी और उन्हें नए सिरे से पुनर्गठन करना पड़ता था। फिर भी प्रतिकूल परिस्थितियों और पराजयों से, यद्यपि वे प्राय: दिल तोड़ देने वाली और रीढ़ तोड़ देने वाली थी वह कभी भी हतोत्साहित नहीं हुए। वह अपराजेय बने रहे और यदि अंग्रेजों ने उन्हें विश्वासघात द्वारा न पकड़ा होता तो वह शायद अभी और कई महीनों तक युद्ध चलाते रहते।

सामरिक उत्साह

अद्भुत सहनशक्ति के साथ मिले उनके सामरिक उत्साह को देखकर शत्रुओं की सांसें रुक जाती थी। जौरा अलीपुर की अपनी पराजय से लेकर मीड द्वारा पकड़े जाने तक की अपनी लंबी दौड़ (मेरेथन रेस) के दौरान जो सात महीने तक चली, उन्होंने कम से कम दो बार राजस्थान और मध्यभारत का दौरा किया, लगभग 16,17,000 वर्ग मील की नाप जोख कर डाली, बार बार नर्बदा नदी पार की। किसी भी मानक से देखा जाए यह एक अद्भुत साहसिक कार्य था। उन्होंने इस क्षेत्र को शाश्वत सरगर्मी की दशा में बनाए रखा। उन्होंने शत्रुओं के स्टेशन ध्वस्त कर दिए, खजाने लूट लिए, आयुधशालाएं खाली कर दीं, माल गाड़ियों और डाकगाडियों पर झपट्टे मारे। उन्होंने सेनाध्यक्षों को काफी नाच नचा दिया और वह भी उनको जो साधारण सेनाध्यक्ष नहीं थे। जैसा कि माल्सन ने

लिखा है 'उन सेनाध्यक्षों की जिन्होंने तात्या का पीछा किया था, मुश्किल से ही काफी प्रशंसा की जा सकती है। उनके अभियान अद्भुत थे। ब्रिगेडियर वार्के ने नौ दिनों में 240 मील की दूरी तय की, ब्रिगेडियर समरसेट ने उसी अवधि में 230 मील की यात्रा की। कर्नल होम्स ने दो दिन से भी कम समय में बलुहे रेगिस्तान में 54 मील की दूरी पार की जब कि ब्रिगेडियर होनर ने केवल चार दिन में ही 145 मील की दूरी समाप्त की।' उनके पैर हर समय घोड़े की रकाब पर रहते थे। उन्होंने ये अभियान बिना तंबुओं बिना उचित सुविधा या आराम के पूरे किए। फिर भी तात्या सदैव उनके युद्ध जाल से बच निकलते रहे। वह जंगलों और पहाड़ियों के बीच छोटे छोटे रास्तों से आते जाते रहे। चंबल, बेतवा और नर्बदा जैसी नदियां भी उनके मार्ग में आड़े न आ सकी। उनकी गतिविधियां बिजली जैसी थीं। कई सप्ताह तक वह रोजना 40 मील चलते रहे। वह शत्रु सेनाओं के बीच होकर, उनके पीछे से या उनके सामने से निकल जाते थे। 'दि टाइम्स' ने लिखा है, 'एरिल उससे अधिक धूर्त नहीं था, पहाड़ी पर, नदियों के धार, दर्रों और घाटियों से होकर, दलदलों के मध्य वह पगडंडियों और टेढ़े मेढ़े रास्तों से होकर आता जाता रहा.........फिर भी प्रोटियस की तरह कुटिल था।'

तात्या की उपलब्धियां

कैम्पबेल जब लखनऊ को बचाने के प्रयास में लगा हुआ था उस समय दक्षिण भारत के साथ उसकी संचार व्यवस्था को छिन्न भिन्न करने की दिशा में कानपुर पर 27 नवंबर को पुनः कब्जा कर लेने से लेकर जब मर ह्यू अन्यथा काल्पी में व्यस्त था उस समय ग्वालियर के पहाड़ी दुर्ग पर कब्जा कर लेने की साहसिक योजना, दक्षिण की दिशा में तूफानी इरादे से बढ़ने के लिए नर्बदा पार करने आदि की योजनाएं उसकी उत्कृष्ट सामरिक कुशलता के नमूना थे। तात्या की सफलताएं यद्यपि अल्पकालीन थीं, फिर भी उनकी व्यूह रचनाएं भी सदा ऐसी रही जो शत्रुओं को भी उनकी प्रशंसा करने के लिए बाध्य कर देती थी।

तात्या की विदग्धता, उनके दृढ़ विश्वास और उनकी संगठन कुशलता के विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसी चुंबक शक्ति थी जो लोगों को उनकी ओर आकर्षित कर लेती थी। अनेक देशी राजा उनके चारों तरफ इकट्ठे हो गए थे। वे केवल किसानों के बीच ही अपने दोस्त नहीं बना लेते थे अपितु आदिवासी वनवासियों के बीच भी उन्हें दोस्त मिल जाते थे। ग्वालियर के सैनिकों का मनपरिवर्तन और फिर वहां सैनिक विद्रोह करा देना उनकी संगठन कुशलता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। अपने गुरिल्ला युद्ध

के दौरान उन्होंने कई बार सेना एकत्र की और उसे खोया भी, तोपें इकट्ठी की और वे हाथ से निकल भी गईं किंतु अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण वह सदैव जो भी खोते थे उसे पा लेते थे। उन्होंने कानपुर के प्रथम युद्ध से लेकर अंत तक जिस अद्भुत संगठन कौशल का प्रदर्शन किया उसके लिए उनकी प्रशंसा की गई है। उनकी यह प्रतिभा जैसे ही उन्होंने पेशवा की सेवा का संगठन किया, प्रकाश में आ गई। तात्या की गिरफ्तारी पर मीड को बधाई देते हुए सर ह्यू रोज ने एक पत्र में लिखा है, इसमें कोई शक नहीं कि 'उन सभी विद्रोही नेताओं में, जिन्होंने विद्रोह में हिस्सा लिया, जहां तक पहल शक्ति का संबंध है तात्या टोपे अप्रतिम साहसी और अत्यधिक धैर्यवान दृढ़ निश्चयी स्वभाव के थे। उनकी संगठन प्रतिभा प्रशंसनीय थी। आपको तो पता भी नहीं है कि उन्होंने तथा कथित पेशवा की सेवा के संगठन में उस प्रकार की प्रतिभा का कितना अधिक प्रदर्शन किया।'

जार्ज फारेस्ट ने, जो तात्या को 'सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय नेता' समझते थे, भी तात्या की विलक्षण संगठन शक्ति का उल्लेख किया है। माल्सन ने किसी अन्य समकालीन लेखकों की अपेक्षा तात्या के विषय में अधिक विस्तार के साथ लिखा है उन्होंने तात्या के 'अद्भुत सैन्य संचालन, मोर्चे के चुनाव के प्रति सही दृष्टि-कोण' और स्थानीय परिस्थितियों के साथ अद्भुत सामंजस्य का विदग्धतापूर्ण विवेचन किया है। किंतु माल्सन की इस श्रद्धांजली की अपनी कुछ सीमाएं भी हैं। वे सभी गुण जिनका उन्होंने प्रदर्शन किया और भी प्रशंसा के पात्र हो जाते हैं। उन्होंने लिखा है यदि तात्या ने उसके साथ सेनानायक की क्षमता और किसी आक्रामक सैनिक का साहस और भी शामिल कर लिया होता। वह कभी भी खुल कर सामने आए। अगर वह शत्रु पक्ष की कमजोरियों पर थोड़ा और ध्यान देते और थोड़ा सा और साहस दिखाते तो अपना पीछा करने वाली सेनाओं को नचाकर रख देते ···वह तो गुरिल्ला सेनानायक थे। दुश्मन पर आग बरसाई और खिसक गए।

यह आलोचना, यद्यपि एक सीमा तक सही है फिर भी इस तथ्य पर ध्यान न रखने से कठोर हो जाती है कि तात्या ने थोड़ा बहुत सैनिक प्रशिक्षण तो प्राप्त किया था मगर प्रख्यात सेनाध्यक्षों के खिलाफ युद्ध करने का, उससे पूर्व उन्हें कोई वास्तविक अनुभव नहीं था। इस परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर तात्या की उपलब्धियां, किसी भी माप दण्ड से क्यों न देखी जाए, विलक्षण ही प्रतीत होगी। फिर भी, यह सच है कि जो भी युद्ध तात्या ने लड़े उनके सभी उपलब्ध विवरणों में, हम यह पाते हैं कि वह सदैव द्वितीय रक्षा पंक्ति में ही रहे। बिठूर और कानपुर के युद्ध में ऐसा ही हुआ, बेतवा के युद्ध में भी यही हुआ था। झांसी की

रानी की भांति वह कभी भी युद्ध भूमि में नहीं रहे। बिठूर और झांसी के निकट वाले युद्ध में हुई उनकी पराजयों का जबकि उनकी कमान में 20000 सैनिकों की सेना थी और दूसरी ओर सरह्यू रोज के पास मुट्ठी भर सैनिक मात्र थे, अन्यथा स्पष्टीकरण दे पाना संभव नहीं प्रतीत होता।

किंतु तात्या की अगर प्रत्यक्ष युद्ध में हार हुई तो गुरिल्ला युद्धों में विजय श्री ने वरण भी तो उन्हीं का किया। जैसा माल्सन ने लिखा है यह सामान्य बात नहीं थी। ऐसा व्यक्ति जिसके पास साधारण किस्म की सेना हो, चारों तरफ से शत्रुओं से घिरा हुआ हो, फिर भी महीनों तक विश्वविख्यात सेनाध्यक्षों के साथ लुका-छिपी खेल कर उन्हें खिझाते रहे, युद्ध कला के इतिहास में मुश्किल से उसकी समानता का कोई व्यक्ति होगा। यही कारण है कि ब्रिटिश इतिहासकार पर्सी क्राम स्टेंडिग ने तात्या को विश्व के सर्वश्रेष्ठ गुरिल्ला सेनानायकों में से एक कहा है। इससे भी आगे, उन्होंने कहा है कि 'हिंदुस्तानियों में विद्रोह के दौरान जो भी नेता सामने आए वह उनमें हर तरह से श्रेष्ठ था ...... अगर और भी दो एक उस जैसे होते तो इसमें कोई शक नहीं कि हिंदुस्तान अंग्रेजों के हाथ से निकल गया होता।

स्वतंत्रता संग्राम जीता गया

आम हिंदुस्तानी जनता के लिए तात्या किंवदंति बन गए हैं। हर घर के लिए वह एक कहावत है। एक ऐसे राष्ट्रीय नेता हैं जिन्होंने स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपने जीवन की आहुति दे दी। उस समय के युद्ध में तो हमारी हार हुई किंतु स्वतंत्रता संग्राम में हमारी पराजय नहीं हुई, जैसा कि एक कवि ने लिखा है--

'युद्ध स्वतंत्रता का फिर से शुरू हुआ।
पिता से पुत्र को रक्त की वसीयत मिली,
यद्यपि बाधाएं आती हैं, मगर जीत हासिल होती है।

अंग्रेज जीत तो गए मगर यह विजय सत्यानाशी विजय थी क्योंकि 1857 के शहीदों ने अपना खून व्यर्थ नहीं बहाया था। उन्होंने प्रत्येक देशभक्त के हृदय में स्वतंत्रता की आग भर दी। परवर्ती पीढ़ियों ने उनकी पताका उठाए रखी, उनके नारे बुलंद किए और तब तक आगे बढ़ते गए जब तक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर ली।

परिशिष्ट

क्या तात्या टोपे को वस्तुत: फांसी दी गई ?

क्या तात्या टोपे को वस्तुत: फांसी दी गई ? दूसरे शब्दों में क्या जिस व्यक्ति को फांसी के तख्ते पर लटकाया गया, वह वास्तव में तात्या ही थे।

इतिहास के अनेक लेखकों और विद्यार्थियों ने, यह प्रश्न उठाया है। जिन्हे यह विश्वास है कि जिस व्यक्ति को फांसी दी गई थी वह तात्या टोपे नही थे अपितु तात्या के छद्मवेश में कोई और थे। उन्होने अपनी शोध के समर्थन मे जो साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं उन्हे आसानी से झुठलाया नहीं जा सकता। उनमें से प्रमुख व्यक्ति है बम्बई विश्वविद्यालय के वर्तमान कुलपति श्री टी० के० टोपे जो तात्या टोपे के चचेरे भाई के प्रपौत्र भी हैं, अठारह सौ सत्तावन के लेखक श्री एस० हार्डीकर और गुजरात विश्वविद्यालय, राजनीति विज्ञान विभागध्यक्ष डा० आ० के० धारय्या हैं।

मराठी मासिक पत्रिका 'वसंत' के अगस्त, 1971 के अक मे अपने एक लेख में श्री टोपे ने अपने इस विश्वास के अनेक कारण बताए हैं कि जिस व्यक्ति को फांसी दी गई थी वह तात्या नहीं अपितु शायद उनके उन दो साथियो में से एक थे जो उस समय तात्या के साथ थे, जब वे मानसिंह के साथ परोन के जंगलों में छिपे हुए थे।

श्री टोपे के अनुसार, तात्या के परिवार में आज भी एक पारंपरिक कहानी प्रसिद्ध है कि तात्या येवाले (नासिक के निकट अपने जन्म स्थान) में अपने परिवार वालों से मिलने के लिए 1859 के अंत में (अपने कथित प्राण दंड के बाद) आए थे और वहां तहखाने में दो दिन तक रहे भी; वह तहखाना आज भी पुरखों की डेहरी में वैसा ही है। वहां से वह पूना की तरफ जाते हुए कोपरगांव गए और यह कह गए कि वे वहां इस उम्मीद में जा रहे हैं कि शायद कुछ मदद मिल सके। उन्होंने अपना विचार श्री टी० के० टोपे के बाबा, त्रिम्बक सदाशिव टोपे को बताया, उन्होंने तात्या के आने की कहानी अपने पुत्र को बताई और श्री टी० के० टोपे को उनके पिता ने बताया।

डा० सुरेन्द्र नाथ सेन की पुस्तक अठारह सौ सत्तावन के पृष्ठ 231 से 234 मे तात्या टोपे का एक रेखा चित्र है, कहा जाता है इसे मेजर मीड की सेना मे

लेफ्टीनेंट बाग ने तैयार किया था। यह रेखाचित्र तात्या के प्राप्य अन्य छाया-चित्रों से मेल नहीं खाता। जान लैंग ने, जिन्होंने तात्या को बिठूर में देखा था, उन्हें औसत कद और दुबली पतली काठी का व्यक्ति बताया है। बाग के द्वारा तैयार किए गए रेखाचित्र में वह हट्टे कट्टे नाटे और गठीले प्रतीत होते हैं। उस चित्र में उनकी खिची हुई, खूबसूरत और चापाकार भौहें भी नहीं हैं जो तात्या के मुख का विशेष लक्षण थीं।

बम्बई सरकार द्वारा प्रकाशित "सोर्स मैटीरियल फार ए हिस्ट्री आफ दि फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया" नामक पुस्तक के प्रथम खंड में, तात्या की गिरफ्तारी से संबंधित कुछ मूल दस्तावेज भी दिए गए है। उनमें से एक पत्र बड़ौदा के असिस्टेंट रेजीडेंट का है जो उसने 14 नवंबर, 1862 को बम्बई सरकार के राजनीति विभाग के सचिव को लिखा था, उस पत्र में सहायक रेजीडेंट ने तात्या के चचेरे भाई राम कृष्ण टोपे के साथ अपने एक साक्षात्कार का जिक्र किया है जो मूलतः बिठूर के निवासी थे और अब नौकरी की खोज में बड़ौदा आ गए थे। उस रिपोर्ट में निम्नलिखित वार्तालाप है :

सहायक रेजीडेंट: "आज कल तात्या टोपे कहां पर हैं ?" रामकृष्ण टोपे: "मुझे नहीं पता वह कहां है। जब से वह हमसे अलग हुए; हमारी मुलाकात नहीं हुई और मैंने उनके पता ठिकाना के विषय में भी कुछ नहीं सुना।"

1862 में, जब कि तात्या के विषय में मान लिया गया था कि वह मर चुके हैं, तात्या के पता ठिकाना के बारे में इस प्रकार की पूछताछ की जानी और वह भी विशेष रूप से राजनीति विभाग के एक अधिकारी द्वारा, एक दुरभिसंधि ही प्रतीत होती है। साफ तौर पर बेकार का यह प्रश्न क्यों पूछा गया था ? राजनीति विभाग ने यह रिपोर्ट मिलते ही, एक पृथक जांच करके इस कथन की सचाई का परीक्षण करने के लिए इसे मेजर मीड को भेज दिया था। मीड ने अपने जवाब में रामकृष्ण टोपे की अन्य बातों को सच और सही बताया है किंतु उत्तर प्रश्न पर चुप्पी साध ली है। मेजर मीड ने साफ तौर पर यह क्यों नहीं कहा कि तात्या के पता ठिकाना के संबंध में राजनीति विभाग का प्रश्न ऊलजलूल था और यह कि उसने स्वयं तात्या टोपे को गिरफ्तार किया था तथा उसे फांसी दे दी गई थी। क्या इस मुद्दे पर उनके मौन का यह अर्थ नहीं है कि उन्हें भी इस बात का पूरा यकीन नहीं था कि जिस व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया और फांसी पर लटकाया गया वही सही व्यक्ति था।

कहा जाता है मानसिंह ने तात्या के साथ छल किया और उसे उस समय धर दबोचा जब वह सोया हुआ था। मानसिंह राजपूत था इस प्रकार अपने सम्मान और आतिथ्य धर्म के विरुद्ध एक राजपूत द्वारा आचरण किए जाने

की बात पर विश्वास किया जाना बहुत ही कठिन प्रतीत होता है। यह संभव है कि मानसिंह ने तात्या के साथ बातचीत की हो और उनके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को गिरफ्तार कर लिया है। उन्होंने अंग्रेजों के साथ यह चाल इसलिए चली होगी कि वह अपनी रानियों और कुटुंब के अन्य सदस्यों को जो मीड की अभिरक्षा में बंधक के रूप में रोक लिए गए थे, छुड़ाने के लिए यह चाल चली हो।

श्री हार्डीकर ने भी इस विचार का समर्थन किया है। उनकी राय मे या तो मानसिंह तात्या के साथ मिला हुआ था और उनके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को गिरफ्तार कराया था या फिर तात्या के भाग निकलने के बाद अपनी जान छुड़ाने के लिए उसने ऐसा किया। हार्डीकर के बाद वाले सुझाव की ही संभावना अधिक है। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार (जिसका स्रोत या तो मानसिंह था या फिर वे सिपाही जिन्होंने तात्या को गिरफ्तार किया) कहा गया था कि तात्या के दो रसोइए उस भगदड़ में जो तात्या की गिरफ्तारी के बाद हुई, भाग गए थे। यदि रसोइए भाग सकते थे तो यह निश्चित है कि गुरिल्ला सेनानायक जिसे उसके शत्रु भी 'पलायन पटु' कहते थे उन मुट्ठी भर सैनिकों को, जिन्होंने उसे गिरफ्तार किया, धोखा देकर आसानी के साथ भाग सकता था।

श्री हार्डीकर ने यह भी तर्क दिया है कि अंग्रेज सरकार ने जैसा कि वायदा किया था, मानसिंह को न तो उसकी जागीर वापस की और न तात्या की गिरफ्तारी में इतने महत्वपूर्ण योगदान के लिए अन्य कोई इनाम ही दिया। क्या ऐसा इसीलिए हुआ कि सरकार को उस व्यक्ति की पहचान के विषय में संदेह था जिसे फांसी दी गई थी ?

इस संदेह को इस बात से और भी बल मिल जाता है कि तात्या को फांसी देने के पश्चात् सरकार ने ऐसे और दो व्यक्तियों को फांसी के फंदे पर लटकाया जिन पर उन्हें तात्या होने का शक था।

श्री हार्डीकर के अनुसार, बिठूर स्थित तात्या के उत्तरजीवी नातेदारों, येवाले स्थित टोपे परिवार ने यह घोषणा की है कि अपने तथाकथित प्राणदण्ड के पश्चात् भी तात्या कम से कम 1862 तक जीवित रहे क्योंकि 1859 से 1862 के दौरान वह प्रायः बिठूर अपने माता-पिता से मिलने के लिए आते थे और उनकी रुपए पैसे से मदद भी करते थे।

तात्या को फांसी पर नहीं लटकाया गया था। इस विचार का समर्थन करते हुए, डा० धारय्या ने यह दावा किया है कि 1862 में माता-पिता की मृत्यु हो जाने के पश्चात्, तात्या, टहलदास नामक साधू के वेष में गुजरात स्थित नवसारी आ गए। वह बाबा जी नामक एक पहाड़ी पर रहते थे जो दूधसागर नाम के

तालाब के मध्य थी । डा० भारद्वाज ने अपने सिद्धांत के संबंध में यह तर्क दिए है कि टहलदास अपने आप को देशस्थ ब्राह्मण कहते थे जो तात्या की भी जाति थी । (2) वह प्राय: बांसवारा के जंगलों में गंगरोल नामक गांव में जाया करते थे जहां पर एक बार तात्या अंग्रेजी फौज से बच निकले थे (3) जब वह नवसारी आए तो अपने साथ रामचंद्र नाम के एक व्यक्ति को भी लिए हुए थे जिसके विषय में ऐसा विश्वास किया जाता है कि वह तात्या के प्रारंभिक जीवन का साथी रामभाऊ था (4) टहलदास धारा प्रवाह मराठी, अच्छी हिंदी और उत्कृष्ट गुजराती भी बोल लेते थे और तात्या भी ऐसे ही थे (5) वह कुशल घुड़सवार थे तथा युद्ध और हथियारों की भी अच्छी जानकारी थी । (6) जान लौग ने तात्या का जो वर्णन किया है वह टहलदास से मिलता था (7) 'तारीखे नवसारी' मे टहलदास के जन्म का वर्ष सम्वत् 1871 (अर्थात् 1813-14 ई०) बताया गया है जो तात्या के जन्म का भी वर्ष है ।

यहां पर यह भी कहा जाता है कि तात्या की गिरफ्तारी और फांसी की रिपोर्ट में कुछ ऐसे मुद्दे भी है जो अजीब से लगते हैं । उनमें से एक है तात्या को फांसी देने में अंग्रेज प्राधिकारियों द्वारा दिखाई गई अनावश्यक हड़बड़ी । कहा जाता है अंग्रेज सरकार यह जानने के लिए बहुत ही उत्सुक थी कि कानपुर हत्याकांड में तात्या का कहां तक हाथ था । उन्होंने कर्नल विलियम्स से, जो कानपुर में जांच कर रहे थे, इस विषय पर तार द्वारा जानकारी मंगवाई थी । फिर भी सैनिक प्राधिकारियों ने उस रिपोर्ट के लिए भी इंतजार नहीं किया जो तात्या को प्राणदंड दिए जाने के एक दिन बाद ही पहुंच गई थी । ऐसी अनुचित जल्दी किस लिए ? क्या गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के बारे में मीड को कोई शंका थी ? यह संदेह इस तथ्य से और भी पुष्ट हो जाता है कि तात्या का पीछा करने वाले जनरलों में से किसी ने भी तात्या को नहीं देखा था ।

सिल्वेस्टर ने, जिन्होंने इस अभियान में हिस्सा लिया था, साफ-साफ लिखा है । "किसी ने उसे कभी देखा भी तो नहीं था ", "जब तक मानसिंह ने उसके साथ विश्वासघात नहीं किया हममें से किसी की दूर से भी उस पर नजर नहीं पड़ी थी ।" इसलिए किसी भी व्यक्ति को तात्या कह कर अंग्रेजों के हाथ सौंपा जा सकता था ।

दूसरी बात जिससे यह संदेह पुष्ट होता है वह है गिरफ्तारी के पूर्व तात्या का कथित आचरण । मानसिंह प्राय: मीड के कैंप में आता जाता था उसकी पूरी जानकारी तात्या को थी । गिरफ्तारी के दिन भी तात्या को पता था कि मानसिंह

---

1 जे० एच० सिल्वेस्टर : रिलेक्शन्स आफ दि कैम्पेन इन मालवा एण्ड सेंट्रल इंडिया, 1860, पृष्ठ 198-99

मीड के कैंप में है और उसे यह भी मालूम था कि मानसिंह ने अंग्रेजों के सामने आत्म समर्पण कर दिया है। फिर वह उसके चंगुल से निकल क्यों न गए ? कहा जाता है तात्या भाग दौड़ मे थक गए थे किंतु यह भी कहा गया था कि पांच सप्ताह के आराम के बाद वह पुन: तैयार हो गए थे और सिरोंज के जंगलों में पुन: विद्रोहियों से मिल जाने तथा अपनी गतिविधि तेज करने की योजना भी बना ली थी। तात्या के संपूर्ण जीवन को देखने से हमें यह पता लग जाता है कि वे ऐसे व्यक्ति नही थे जो सहज ही पराजय स्वीकार कर लेते और इस बात पर तो विश्वास ही नहीं होता कि वह उस शत्रु के द्वारा गिरफ्तारी और मुकदमेबाजी के लिए अपने आप को भाग्य के सहारे छोडते जिससे उन्होंने लंबे काल तक युद्ध किया। अत तात्या की कथित गिरफ्तारी की बात उनके चरित्र से असंगत बैठती है।

खैर जैसा भी हुआ हो, उपर्युक्त तर्कों को ध्यान में रखते हुए हम केवल यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि तात्या की गिरफ्तारी और प्राणदंड को ऐसे सुस्थापित तथ्य के रूप में भी स्वीकार नही किया जा सकता जिस पर प्रश्न न उठाए जा सके।

यह सर्वविदित है कि तात्या (या उस व्यक्ति ने जो अपने आप को तात्या कहता था) ने अपने इस बयान पर हस्ताक्षर किए थे जो उन्होंने मृत्यु दंड के पूर्व दिया था और तात्या की उस व्यक्ति के रूप में जिसे फांसी पर लटकाया गया था पहचान का एक तरीका यह भी है कि उस हस्ताक्षर का तात्या के अन्य हस्ताक्षरों के साथ, जो उन्होंने उस समय जब वह नाना के प्रधान लिपिक थे, कहीं न कहीं कागजातों पर अवश्य ही किए होंगे, मिलान किया जाए। यह बात तभी संभव है जब दिसंबर, 1857 में ब्रिगेडियर होप ग्रांट द्वारा बिठूर महल को पूरी तरह ध्वस्त करने के बाद भी नाना के कार्यालय के कुछ दस्तावेज नष्ट होने से बच गए हों।

ग्रंथ सूची

1. बेल, चार्ल्स—इंडियन म्यूटिनी
2. धारय्या, डा० आर के—गुजरात इन 1857
3. धरम पाल—तात्या टोपे
4. फॉरेस्ट, जी० डब्ल्यू०—हिस्ट्री आफ इंडियन म्यूटिनी
5. गवर्नमेंट आफ बाम्बे—सोर्स मैटीरियल फार हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, खंड 1, 1818-1885
6. जोशी, विष्णु श्रीधर—मृत्युंजय आत्मयज्ञ
7. कार्ये, सर जॉन—ए हिस्ट्री आफ सिपाय वार इन इंडिया
8. लावै—सेंट्रल इंडिया ड्यूरिंग दि रिबेल्यन आफ 1857 एंड 1958
9. माल्सन, कर्नल जी० बी०—हिस्ट्री आफ इंडियन म्यूटिनी
10. माल्सन, ले० कर्नल डब्ल्यू०—दि रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया, 1958-59
11. मजूमदार, आर० सी जनरल एडीटर—दि हिस्ट्री एंड कल्चर आफ दि इंडियन पीपॅल—ब्रिटिश पेरामाउन्ट्सी (प्रभुता) एंड इंडियन रेनों सों भाग (भारतीय विद्या भवन)
12. रसेल, विलियम हावर्ड—माई इंडियन म्यूटिनी डायरी
13. साठे वी० डी और जी० डी केवल्कर—सत्तावनवे हुतात्मा
14. सावरकार, वी डी—1857
15. सेन, डा, सुरेन्द्रनाथ—अठारह सौ सत्तावन
16. मीड एंड शेरर—डेली लाइफ ड्यूरिंग इंडियन म्यूटिनी
17. सिल्वेस्टर, जे एच—रिकलेक्शंस आफ दि कैम्पेन इन मालवा एंड सेंट्रल इंडिया
18. थामसन, कैप्टन मॉव वे—स्टोरी आफ कानपुर
19. थामसन, थामस हेनरी—जनरल सर रिचर्ड मीड
20. ट्रेविलयन, सर जार्ज—कानपुर

लिंक प्रिन्टर्स, 824 पी० एल० शर्मा रोड, मेरठ द्वारा मुद्रित।